ISSN : 2321-3922
जुलाई– 2021
RNI-BIHHIN05394
वर्ष – 7 अंक–25

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जुलाई-सितम्बर- 2021

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–7, अंक–25

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संरक्षक
डॉ. विजय कुमार सिंह

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
अश्विनी प्रजावंशी

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक पत्रिका है जिसे वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह प्राप्त हो रहा है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है, ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अक्टूबर–दिसम्बर 2021 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रचनाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइए सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
लघुशोध	हिन्दी निबंध : दशा और दिशा	डॉ. कुन्दनलाल उप्रेति	06
समीक्षा	सरहदों के पार दरख़्तों के साये में	ओम ढींगरा	09
समीक्षा	साँच की आँच से निकली कविता 'इतिहास के अभागे'	अरुण कुमार वर्मा	10
कविता	आया बसंत बदल गई ऋतु	शैलेन्द्र कुमार चतुर्वेदी	12
गीतिका	कौन जादू कर गया	रमेशचन्द्र शर्मा	12
समीक्षा	आनुभूतिक संवदेना का उदात्तीकरण	डॉ. रणजीत पटेल	13
कविताएँ	बख़्श दे, सँभल जा	संजय कुमार	15
समीक्षा	'मन के मनके	सुषमा मुनीन्द्र	16
कविताएँ	बेटी और भैंस, बेटी का सौदागर	सूर्यप्रकाश मिश्र	17
कुण्डलिया	कितना कौन गिनाये	सुनील कुमार 'पटेल'	17
आलेख	भागलपुर जेल में रेणु	भारत यायावर	18
आलेख	रामकथा : कुछ रचने की सार्थकता	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ	23
कविताएँ	कर जय जय	देवेन्द्र कुमार मिश्रा	24
आलेख	हिन्दी साहित्य में स्त्रीरूप की अभिव्यक्ति	डॉ. रश्मि सी.मालगी	25
कविताएँ	गलती से, आईना	मोहन दास नौमिषराय	26
ग़ज़ल	बुरा भी भला दिखाई देता है	पंडित गिरिमोहन	26
जीवनी साहित्य	दिवंगत हिन्दीसेवी : आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'	डॉ. इन्द्र सेंगर	27
ग़ज़ल	दुआ कबूल हुई	डॉ. महेन्द्र अग्रवाल	31
आलेख	मनाज़िर आशिक़ हरगानवी : साहित्य सृजन शक्ति	सफिर्उर रहमान राइन	32
कविता	राम का वंशज या रहीम का बेटा	नसीम साक़ेती	34
संस्मरण	शुभचिंता और मार्गदर्शक : डॉ राजेन्द्र पंजियार	डॉ. पंकज साह	35
डायरी	जब मैं बच्चा था : साहित्यकार हरिलाल कुंज	पारस कुंज	37
कविताएँ	डॉल्फिन बचाएँ/काल, नियति	अंजनी कुमार शर्मा/मोतीलाल दास	38
समीक्षा	दृश्य से अदृश्य का सफर	पंकज सुबीर	39
आलेख	मगध अंचल की लुप्तप्राय : बगुली दिदिया	अश्विनी कुमार 'आलोक'	41
कविताएँ	स्वच्छता गीत/फिर लौटता है	मंजरी पांडेय/ज्योति सिन्हा	42
लघुशोध	हिन्दी व्यंग्य परंपरा : एक अनुशीलन	डॉ. अवधेश कु. चन्सौलिया	43
कहानी	वजूद	डॉ. रंजना जायसवाल	45
ग़ज़ल	ख़ुद को बहलाती रहेगी	धर्मेन्द्र गुप्त	46
कहानी	जीवन का दर्द	विकेश निझावन	47
रिपोर्ताज	डोमिसाइल	अनिता रश्मि	50
लघुकथा	अवनी बाबू	शैलेन्द्र अस्थान	52
लघुकथाएँ	एक और बैक्टीरिया, इख़्तिलाफ	सेवासदन प्रसाद	52

इतिहास के आँसू

वैभव की मुस्कानों में
थी छिपी प्रलय की रेखा
जीवन के मधु–अभिनव में
बस इतना ही भर देखा

निर्भय विनाश हँसता था
सुषमाओं के कण–कण में
फूलों की लूट मची थी
माली–सम्मुख उपवन में

माताएँ अति ममता से
अंचल की दीप छिपाती
थी घूम रही आँगन में
अपने मुख पर इतराती

पर विवश गोद से छिनकर
फूलों का शव जाता था
औ राजदूत आँसू पर
कुछ तरस नहीं खाता था

घुल रही कहीं बालाओं
के नव सुहाग की लाली
थी सूख रही असमय ही
कलियों से लदी द्रुमाली

मैं ढूँढ़ रहा था आकुल
जीवन का कोना–कोना
पाया न कहीं कुछ केवल
किस्मत में देखा रोना।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

साधारण जनजीवन विशिष्ट जीवन से भिन्न होता है, जिसकी सरलतम, नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण उसके लोकगीतों, लोककथाओं तथा लोकसाहित्य में मिलता है। लोक साहित्य में लोक मानव का हृदय बोलता है। प्रकृति स्वयं गाती–गुनगुनाती है। इस साहित्य में सभी प्रकार की भावनाएँ बिना किसी कृत्रिमता के समाई रहती है। यदि कहीं की समुची संस्कृति का अध्ययन करना हो तो वहाँ के लोक साहित्य का विशेष अवलोकन करना पड़ेगा। लोकसाहित्य वह निर्मल दर्पण है, जिसमें किसी देश में रहनेवाली जनता की आत्मा का सच्चा स्वरूप देख सकते हैं। किसी देश में बसनेवाली अनपढ़ और भोली–भाली जनता, जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती–खेलती है, वह सब कुछ लोक साहित्य है और यही वह मौलिक भंडार है, जिसे मानव ने आजतक अपने हृदय में सुरक्षित रखा है। लोक साहित्य में गद्य की अपेक्षा पद्य की मात्रा में मिलता है, किन्तु शिष्ट साहित्य में उपन्यास, कहानी, कविता, संस्मरण, रेखाचित्र, एकांकी, नाट्य आदि मिलते हैं। लोक साहित्य में गद्य के नाम पर मुहावरे, कहावतें और लोककथाएँ आदि। लोकसाहित्य में लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा एवं लोकनाट्य अलग–अलग नामों से पुकारा जाता है। भारत में अनेक प्रकार के लोकगीत हैं–संस्कारों की दृष्टि से, रसानुभूति की प्रणाली से, ऋतुओं तथा व्रतों के क्रम से तथा विभिन्न जातियों के आधार पर। लोकगाथा के विषय में मोटे तौर पर यही कहा जा सकता है कि वह कथात्मक गेय काव्य है, जो लोक के गले में विकसित होकर या लोकगाथा के सामान्य रूप विधान को लेकर किसी विशेष कवि द्वारा रचा जाता है। इसमें गीतात्मकता और भावनात्मकता दोनों होती है और इसका प्रचार जन सामान्य में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से ही होता है।

संसार की सभी भाषाओं के शिष्ट साहित्य और उसकी परंपराओं का मूल आधार लोकसाहित्य ही है। जनश्रुति के आधार पर ही इसमें अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं, इसमें धार्मिक ग्रंथ भी है और ऐतिहासिक ग्रंथ थी। इसी तरह महाकाव्यों की रचना के मूल में भी लोकसाहित्य ही काम कर रहा है। अतएव संसार के किसी भी भाषा के सभ्य और शिष्ट साहित्य के अध्ययन हेतु लोक साहित्य बड़ा ही उपयोगी है। शिष्ट साहित्य की भाषा स्वतंत्र नहीं होती। वह व्याकरण और भाषाशास्त्र के नियमों के बंधनों में जकड़ी हुई होती है। साहित्य उसे दर्शाता है, जो हमारे आस–पास अथवा हमारे मन में जो घटित होता है, उसमें दर्शन भी हो सकते हैं। यह हमारी दृष्टि पर निर्भर करती है कि हम अपने आकलन को किस तरह से सामने रखते हैं। हिन्दी एक विस्तृत भाषा है, जिसमें अनेक सहयोगी भाषाओं का समावेश है। यूँ कहें कि हिन्दी भाषा गंगा की तरह बड़ी नदी है, इसमें विभिन्न छोटी–छोटी नदियाँ जुड़कर इसे विशाल बनाती हैं। साहित्य की भाषा को अपने समय–काल की पहचान होती है। इसकी भाषा सधी होती है। इसे लंबे समय तक पढ़ा जाता है। साहित्य व्यक्तित्व का सृजन करता है। इसकी भाषा अभिव्यक्ति को कला का रूप देती है और शब्दों से चित्र बनाती है। काल्पनिक कथाओं को जीवित एवं सच्ची घटना के रूप में चित्रित करती है। हमारा भारतीय साहित्य अपने आपमें इतना विस्तृत है कि एक जन्म में उन्हें पढ़ लेना किसी के लिए संभव नहीं है। क्योंकि इसका संबंध मानव की संवेदना से है। यही एकमात्र वह साधन है, जिसने संवेदनाओं के माध्यम से प्राचीन और नवीन को एक श्रृंखला में समाविष्ट कर रखा है। इसमें जो जीवंत साहित्य है, उसमें सौंदर्य चेतना, भाव बोध, मूल्यबोध और जीवन चिंतन समाहित रहते हैं।

आज के इस बदलते परिवेश में साहित्य एक नए रूप में हमारे सामने आया है, ऐसे में जीवन और समाज के बदलते परिदृश्य का आकलन करना और उस कर्तव्य बोध की ओर निर्देशित करना साहित्यकार की सबसे बड़ी चुनौती बन गयी है। एक ओर साहित्य के मानक समाज के मानकों से आधार प्राप्त करते हैं, तो दूसरी ओर निष्पक्ष एवं उदारवादी दृष्टि रखनेवाला रचनाकार स्वस्थ समाज के निर्माण की नींव रखते हैं। इस दृष्टि से रचनाकार का दायित्व अत्यन्त व्यापक है। हमारे साहित्य का मूल आधार ही अत्यन्त संभावनाओं में है, जो कल्पना और भावना से भी परे है। भारतीय काव्यशास्त्र के पंडितों ने साहित्य में 'हितेन सहितम् इति साहित्यम्' अथवा 'सहितयोः भावः साहित्यम्' दोनों स्थितियों में साहित्य के उद्देश्य के रूप में समाज के हित की ही कल्पना की है। साहित्य एक निश्चित और सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश में पल्लवित और विकसित होता है। हमारे रचनाकारों ने कल्पना सीप में मोती, फूलों की सुगंध और रिमझिम बरसते बादलों की पावन बूंदों में बरसते शब्दों से रचकर सतरंगा इन्द्रधनुष के सदृश्य इस 'सुसंभाव्य' पत्रिका में अंतर्मन के खोहों को खोलकर उदात्त भावों का उन्मेष किया गया है। इनकी रचनाओं में भाषीय सहजता, सरलता, संवेदनशीलता और सम्प्रेषणीयता का सम्मिश्रण मौजूद है। यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास और संवर्द्धन में उल्लेखनीय भूमिका निभाती रही है। कविता, कहानी, निबंध, आलोचना, यात्रावृतांत, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा और शोध से संबंधित आलेखों का नियमित प्रकाशन तथा समाज के अंदर साहित्यिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के साथ हिन्दी के वैश्विक मंच को विशाल से विशालतर करना इसका मूल उद्देश्य है। हिन्दी अब मात्र साहित्य की चीज नहीं, वरन् यह हृदय को जोड़नेवाली ऊर्जा भी है और प्रेम की गंगा भी, जिसकी कुछ बूँद आपको समर्पित है–सादर...!

लघुशोध

हिन्दी निबंध : दशा और दिशा

डॉ. कुंदनलाल उप्रेति
हिन्दी विभागाध्यक्ष
श्रीवासने कॉलेज अलीगढ़
मो0 9837461106

साम्प्रतिक परिवेश में निबंध साहित्य का अत्यधिक क्षेत्र विस्तार हुआ है, जिसमें ललित निबंध की असीमित और अनगिनत संख्या है। तनावग्रस्त वातावरण में गंभीर चिंतन–मनन नहीं हो सकता। उपभोक्तावादी, बाजारवादी एवं प्रतियोगितावादी साहित्यिक परिवेश में भी गंभीरता के साथ साहित्य–सृजन नहीं हो सकता। यही कारण है कि अंधाधुंध, ताबड़तोड़ एवं आपाधापी में आज लेखक तनावग्रस्त होकर उपभोक्तावादी से ही साहित्य सृजन कर रहा है। उसकी दृष्टि अधिक उत्पादन पर टिकी हुई है, गुणवत्ता पर नहीं। हाँ, कुछेक साहित्यकार आज भी निष्ठापूर्वक गुणवत्ता बरकरार रखते हुए साहित्य सृजन में जुटे हुए हैं, लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है। अनेक लेखक विभिन्न साहित्यिक एवं भाषा संबंध विषयों और समस्याओं पर निबंध लिख रहे हैं। भाषा समस्या, पर्यावरण समस्या, आतंकवाद की समस्या, देश की एकता–अखंडता की समस्या, जनसंख्या विस्फोट की समस्या, नारी विमर्श की समस्या आदि समस्याएँ लेखकों के समक्ष रही हैं, जिनपर कुछेक निबंध और अधिकांश समीक्षात्मक आलेख प्रकाशित हुए हैं। इससे निबंध साहित्य की दशा और दिशा का बोध होता है।

कथाकारों में उपन्यास लेखकों और कहानी लेखकों ने समीक्षात्मक निबंध पत्र–पत्रिकाओं में खूब लिखे हैं। विवादास्पद विषय भी उठाए गये हैं। धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, निर्मलवर्मा, राजेन्द्र यादव आदि ने आधुनिक साहित्य में पनपती हुई अश्लीलता, संत्रास, कुंठा, अवसाद, व्यथा आदि की प्रवृतियों से संबंधित अनेक विचारोत्तेजक निबंध लिखे हैं। साहित्यिक प्रदूषण के बढ़ते हुए चरण पर भी चिंता व्यक्त की गई है। वाणी प्रदूषण, साहित्यिक प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रदूषण, सामाजिक प्रदूषण, रक्त प्रदूषण आदि ऐसे प्रदूषण हैं, जिससे भारतीय साहित्य पूरा प्रभावित हुआ है। हिन्दी, संस्कृत आदि के साथ–साथ साहित्य की अन्य विधाएँ भी इन प्रदूषणों का शिकार हो चुकी हैं। इस प्रकार के निबंध विचारोत्तेजक निबंध सिद्ध हुए हैं।, फिर भी ये निबंध हमें इन समसामयिक समस्याओं का गहन चिंतन–मनन करके समस्या समाधन को प्रेरित करते हैं, प्रोत्साहित करते हैं। आधुनिक साहित्य की गंभीर शास्त्रीय एवं वैचारिक समस्याओं पर कुबेरनाथ राय ने विवादास्पद निबंध लिखे, फिर भी उनसे निबंध साहित्य में एक जागरुकता की लहर उठने लगी थी और सकारात्मक परिणाम आए थे।

निबंध लेखन में पौराणिकता और इतिवृतात्मकता के धरातल पर भी निबंधकारों ने गंभीर कार्य किये हैं। मिथकीय चेतना और सांस्कृतिक चेतना मुखरित कर निबंधकारों ने भारतीय संस्कृति को वैश्विक संस्कृति के रूप में स्थापित करने का भी सराहनीय कार्य किया है। भावुकता के साथ यथार्थवादी अंकन की प्रवृत्ति भी निबंध लेखन में देखने को मिली है। निबंधों में लालित्य तत्त्वों का भी समाहार देखने को मिला है तथा साक्ष्य देखने को मिला है, जो एक शुभ संकेत है। इस प्रकार के निबंधों से पाठकों में वैचारिक उत्तेजना उत्पन्न कर नये युग की नई–नई समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त होने की संभावना बढ़ी है। साथ ही इस प्रकार के निबंध लेखन से मौलिक और स्वतंत्र चिंतन की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा मिलेगा।

पत्र–पत्रिकाओं में आजकल एक नए प्रकार के निबंध लेखन देखने को मिला है, जिनमें रिपोर्ताज, साक्षात्कार, पत्रलेखन आदि का समाहार देखा गया है। विभिन्न प्रकार के कुछेक लेखक सहज–सरल रूप से किसी विशिष्ट कवि, साहित्यकार, राजनेता या धर्माचार्यों का साक्षात्कार लेकर प्रकाशित कराने की एक नई परंपरा चल पड़ी है। साक्षात्कार की परंपरा तो पुरानी और स्वस्थ साहित्यिक परंपरा रही है, लेकिन सम्प्रति उसमें दोष आ गये हैं और वे खानापूरी तथा स्वार्थसिद्धि तक ही सीमित रह गई है। सभी साक्षात्कार दोषपूर्ण नहीं है, कुछेक साहित्यिक मर्यादा को स्थापित करने में अप्रतिम सिद्ध हुए हैं। वस्तुतः निबंध लेखन का वैशिष्ट्य लेखकीय व्यक्तिनिष्ठता में निहित होता है। राजनाथ शर्मा ने इस संबंध में 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि 'कुछ लेखक कुछ विशिष्ट नगर को नायक बना रात या दिन में उसके संपूर्ण रूप और गतिविधियों का समवेत वर्णन एक नई शैली और प्रचलित लोकभाषा में उतार देते हैं। ऐसे लेखकों में केशवचन्द्र वर्मा, मनोहर श्याम जोशी, कैलास नारद आदि उल्लेखनीय हैं। यह निबंध का एक सर्वथा नया रूप है। इसमें भाषा की बानगी देखते ही बनती है। इसे हिन्दी निबंध साहित्य की नवीन समृद्धि का रूप माना जा सकता है। (पृ. 716) । रमेशदत्त शर्मा के वैज्ञानिक निबंध और डॉ. कन्हैया लाल कपूर के निबंध इसी कोटि के अंतर्गत आते हैं, जिनका ऐतिहासिक महत्व है। अतएव हिन्दी–निबंध साहित्य ने इक्कीसवीं शती के द्वितीय दशक में अपने साहित्यिक रूपों को अपने अंक में समाहित कर लिया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं शती की द्वितीय दशक तक आते–आते निबंध साहित्य का बहुआयामी विकास हुआ है, जो निबंध साहित्य की समृद्धि और अभिवृद्धि के साथ–साथ इस विपुल क्षेत्र–विस्तार का भी द्योतन करता है। जीवन का यथार्थवादी अंकन, कथात्मक संवेदना, सामाजिक विसंगतियों की प्रस्तुति एवं अभिव्यक्ति, गद्य–काव्य के प्रति भावुकता, भाषायी सम्प्रेषणीयता, वैचारिक उत्कृष्टता आदि तथ्यात्मक प्रवृत्तियों से निबंध साहित्य समृद्ध हुआ है। अन्य साहित्यिक विधाओं के समीक्षात्मक–आलोचनात्मक निबंधों से निबंध साहित्य का भंडार भरा हुआ है। इसमें भाषा परिमार्जन तथा परिष्कार विषयक निबंध भी देखे गए हैं तथा शब्द भंडार का विपुल भंडार है। निबंध विधा में अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों के साथ व्यवहार में आनेवाले अरबी, फारसी, उर्दू, संस्कृत, भोजपुरी, मैथिली, अवधी, ब्रज आदि भाषाओं के शब्द प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

निबंध साहित्य अद्यतन परिवेश में साहित्यिकता के परिपार्श्व में आबद्ध है। गांभीर्य, प्रौढ़ता, परिपक्वता, परिमार्जिता, शास्त्रीयता, तार्किकता एवं विवेकशीलता की प्रवृत्तियों से भी निबंध साहित्य ओतप्रोत है। वैश्विक स्तर पर साहित्य–सृजन में प्रतियोगी प्रवृत्ति का वर्चस्व स्थापित हो गया है। इंटरनेट पर भी साहित्यिक कृतियाँ उपलब्ध हैं। लेखक को अपनी रचनाधर्मिता निर्वहन करने हेतु मनमानसिकता बनाने को सम्प्रति आवश्यकता है। यही कारण है कि हिन्दी निबंध गुण और परिमाण दोनों स्तरों पर सफल है, क्योंकि पूर्व की अपेक्षा लेखकों के संसाधनों में वृद्धि हुई है और लेखक प्रेरित, प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत और सम्मानित भी हुए हैं। प्रातीय राज्य सरकारें और केन्द्रीय सरकार के अधीनस्थ मानव संस्थान विकास मंत्रालय ने हिन्दी एवं हिन्दी से इतर भाषाओं के विकास के लिए अनेक कार्यक्रम चला रखे हैं। आर्थिक अनुदान भी दिये जा रहे हैं। प्रकाशन हेतु लेखकों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। हाँ, ललित निबंध कम हुआ है और उस क्षेत्र में गिने–चुने निबंधकार ही आज भी निबंध लेखन में संलग्न हैं। उन्हें प्रेरित और प्रोत्साहित करने की आज महती आवश्यकता है। नये निबंधकारों को अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार निबंध लेखन से जुड़ना चाहिए और अज्ञातकुल लेखकों को भी सहभागी बनाना चाहिए, ताकि निबंध साहित्य अपनी प्रगति की ऊँचाई पर अधिष्ठित हो सके।

वस्तुतः मानव की आत्मचेना में आत्मतत्व निहित शोधयामि की प्रवृत्ति होती है, जिसमें 'होने' या 'हूँ' का बोध निहित रहता है। यही तत्त्व निबंध लेखन में आत्मबोध की सजगता के साथ क्रियाशील हो उठता है। साम्प्रतिक परिवेश में मानव आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है, फिर भी साहित्य सृजन में वही तत्त्व मानवतावाद, सर्वेश्वरवाद, अस्तित्ववाद आदि रूपों में अभिव्यंजित होता है। साहित्यकार वास्तव में अपनी चिंतन की गहन गुफा में अधिष्ठित होकर ही साहित्य सृजन करता है, जिसके मूल में, उसकी चेतना में नैरन्तर्य की अनुभूति

है, जिसके साथ चित्त बिन्दु साहित्य सागर की यात्रा करता है। निबंधकारों ने अपनी पूर्ववर्ती निबंधकारों की परंपरा का किसी–न–किसी रूप में अनुकरण किया है। वैसे परंपरा अखंड होती है, अभिभाज्य होती है, उसे तोड़ा नहीं जा सकता। वह निरंतरता में, काल प्रवाह में, अतीत के वर्तमान स्पंदन में विकसित होती है। उसमें समयानुसार परिवर्तन भी होता है और रूपान्तरित होना तो परंपरा की प्रकृति है और प्रवृत्ति भी।

निबंध साहित्य की ख्याति चहुदिशि में व्याप्त है, क्योंकि उसमें भौतिक और आध्यात्मिक मूल्य जीवन की पूर्णता का, समग्रता का द्योतक सिद्ध हुए हैं। निबंधकारों ने युग के नये मान मूल्यों का मंथन करना अद्यतन परिवेश में आरंभ कर दिये हैं। यह भी देखने में आया है कि अधिकांश निबंधकारों में भावनात्मक तत्त्व का प्राधान्य है, रागात्मक तत्व शिथिल हो गया है। कारण है–बौद्धिकता का प्राबल्य तथा रागात्मक तत्व का बिरल होना। मूल्यों का संकट मूल्यों के क्षरण की चिंता करने से हल नहीं हो सकता, बल्कि बुद्धिजीवी बौद्धिकतावादी युग में ज्ञानयज्ञ में सत् साहित्य–सृजन की आहुति देने से ही हल हो सकता है। वास्तव में भारतीय संस्कृति में वैश्विक संस्कृति के बुनियादी तत्व विद्यमान है, क्योंकि भारतीय संस्कृति नागरिक मूल्यों पर आधृत समागम की स्वीकृति है।

सांस्कृतिक संक्रमण की समस्याओं को निबंधकारों ने कुछ सीमा तक सही उठाया है तथा बड़ी संवेदनशीलता के साथ समसामयिकताबोध के धरातल पर उन्हें हल करने का भी प्रयास किया है। मूल्यों के विशृंखलन और सामाजिक बिखराव की स्थितियों–परिस्थितियों के सार्थक विवेचन–विश्लेषण ने उन्हें निबंध लेखन में नया रूप दिया है। इस प्रकार मानवसमाज की एकात्मकता की खोज करने हेतु कुछेक निबंधकारों ने उसका जबर्दस्त समर्थन भी किया है। अधिकांश निबंधकारों के निबंधों में मूल्यों की चिंता सदैव बनी रही है। सार्वभौमिकता और जातीयता के तत्वों का भी समाहार निबंध साहित्य में देखा गया है समाज के द्वंद्वऔर संघर्ष को भी प्रकारान्तर से निबंधकारों ने अपने निबंधों को माध्यम बनाकर व्यक्त किया है, जिसके निबंध साहित्य को सही दिशा मिली है तथा निबंध की दशा में सुधार भी हुआ है। अहं का विसर्जन साहित्यकार के लिए अनिवार्य होता है, क्योंकि अहं का विसर्जन ही साहित्य सृजन की कसौटी होती है। इस विसर्जन में स्व अर्थात् स्वयं का अर्जन होता है तथा इस विसर्जन में साहित्यकार स्वयं विदेह हो जाता है, जिसके कारण उसकी तात्विक दृष्टि ही समाज को बदल देती है। समाज को बदलने की आकुलता, व्याकुलता और व्यग्रता ही साहित्यकार की तात्विक दृष्टि में होती है। इसी प्रकार निबंधकार की सहज संवेदनशीलता ही तात्विक दृष्टि को शक्ति प्रदान करती है, ऊर्जावान बनाती है।

निबंध साहित्य की दशा और दिशा के संबंध में यह कहा जा सकता है कि अद्यतन परिवेश में निबंधकारों ने विविध विषयों पर अपने विचारों को अपने–अपने तरीके से व्यक्त किये हैं, जिससे उनके निबंधों की सर्जना हुई है। भावाभिव्यक्ति और विचाराभिव्यक्ति चाहें, जिस रूप में हुई है तथा निबंधकारों की भी अपनी उद्भावनाएँ भी व्यक्त हुई हैं, लेकिन निबंधों में आत्माभिव्यंजन तत्व सबमें विद्यमान हैं, परिलक्षित होते हैं। यही कारण है कि आत्मपरक दृष्टि से निबंधकार अपने निबंधों में निरंतर, अनवरत रूप से गतिमान रहता है। अन्य साहित्यकारों की तरह आज का निबंधकार भी अपने भीतर जीवन प्रवाह–साहित्य संवेदनात्मक प्रवाह रुकने नहीं देता है। कुछेक निबंधकारों में निबंध साहित्य के प्रति रागात्मक लगाव देखा गया है, जिसके कारण उनके निबंधों में तेजस्विता है, प्रखरता है और पाठकीय चेतना को जागरित करने की जबर्दस्त ऊर्जा है। सामान्य रूप से निबंध को समीक्षात्मक–आलोचनात्मक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक विषयक आदि विविध श्रेणियों में रखा जा सकता है। सम्प्रति निबंधकारों ने अपने बहुआयामी निबंधों को सरस, सरल, सुबोध एवं प्रभावाभिव्यंजक रूप में प्रस्तुत किया है।

निबंध साहित्य की दशा और दिशा के संबंध में अमेरिकन कवि लॉगफेलो का कथन प्रेरक होने के साथ–साथ चरितार्थ भी हुआ है, जिसमें कहा गया है कि 'सभी महान पुरुषों ने जो ऊँचाइयाँ प्राप्त की है, निरी उड़ान नहीं है, बल्कि वे काम करते थे, जबकि दूसरे सोते थे।' बात रात्रि जागरण की कदापि नहीं है, बल्कि गंभीर और गूढ़ चिंतन–मनन से साहित्य सर्जन का संकल्प लेने का है। निबंधकारों की भी अपनी प्रतिभा और मनस्विता है, जो उनका प्रथ–प्रदर्शक बनकर साहित्य को आलोकित किया है। चिंतन तथा संकल्पशील प्रयत्नों और इस दिशा में उनके मनसा, वाचा एवं कर्मणा समर्पण ही काम्यसिद्ध हुआ है। युग चेतना से अनुप्राणित और समन्वित उनका चिंतन रहा है। उनकी संवेदनशील प्रकृति ही उन्हें स्वतः निबंधों के माध्यम से समसामयिक परिप्रेक्ष्य में भावोद्गार व्यक्त करने को प्रेरित और प्रोत्साहित करती रही है।

निबंध साहित्य की एक विशेषता रही है कि निबंधकारों की कर्मयोगिनी ओजस्विता ही आगे चलकर सर्वोदयी साधना के रूप में साहित्यिक अन्य विधाओं में भी प्रसार पाती रही। यही कारण है कि साहित्य में जहाँ निश्छल अनुभूति की सार्वजनीनता होती है, वहाँ उसकी अभिव्यक्ति की लोक सुलभ भाषा भी निहित होती है। कुछेक निबंधकारों ने तो साहित्य निर्माण और लोक कल्याणकारिता के क्षेत्र में समर्पण भाव से निबंध रचे हैं, जिनसे परवर्ती निबंधकार प्रेरित होते रहेंगे, क्योंकि उदात्त मूल्यों को अंगीकार करते हुए उन्हें निबंध लेखन किया है। यद्यपि ऐसे निबंधकार बिरले ही हैं, फिर भी वे मौलिक विचारक, साहित्यसाधक एवं निबंध मर्मज्ञ के रूप में अहम भूमिका निर्वहन करने में सक्षम सिद्ध हुए हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति और बाजारवादी संस्कृति से सम्प्रति साहित्यकार प्रभावित हो चुका है। वियोगी हरि ने इसका संकेत करते हुए लिखा है कि 'साहित्य–सृष्टाओं को आज अपना अनमोल शील भी बाजार में रखना पड़ रहा है। स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण के अभाव में अच्छे और ऊँचे साहित्य की अभिवृद्धि असंभव है।' निबंध लेखन भी आज के समय में, तनावग्रस्त वातावरण में कठिन साध्य हो गया है। वास्तव में शब्दब्रह्म की साधना भी एक कठिन तपश्चर्या है। इसका उपासक और साधक जब स्वयं अपने आपको पूर्णरूपेण इस निबंध लेखन की साधना में डूबो देगा, तभी उसे स्वान्तः सुखाय की अनुभूति होगी और निबंध लेखन में सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति होगी। यही शब्दब्रह्म लेखक और पाठकों को रसानुभूति कराने में सक्षम सिद्ध होगा, जो उन्हें आनंदानुभूति में निमग्न कर देगा।

अद्यतन परिवेश में साहित्य सर्जक भी सत्ता और सम्पत्ति से सम्मानित होने की प्रतियोगिता में खड़ा है। यह आज उसका स्वभाव बन गया है। साहित्य सर्जक तो वीतरागी प्रकृति का होता है। उसकी नीयत और नियति भी उसका साथ बाजारवादी संस्कृति छोड़ रही है। इसलिए आवश्यक हो गया है कि निबंधकारों को भी सच्चे साहित्य सर्जक की तरह आध्यात्मिकता, धार्मिकता एवं नैतिकता के समन्वित धरातल पर साहित्य–सृजन का सकंल्प लेना चाहिए, ताकि निबंधों के माध्यम से समरस समाज और राष्ट्र का निर्माण किया जा सके। यही आज के प्रदूषित और मूल्यों के क्षरण के युग में एकमात्र विकल्प है। शिवसंकल्प निबंधकारों को आज संकल्प लेने की महती आवश्यकता है।

हिन्दी निबंध की दशा और दिशा निर्धारण में सबसे बड़ी बाधा वर्तमान युग की वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं कंप्यूटराइज्ड प्रगति और बौद्धिकतावादी प्रवृत्ति है, जो मानव जीवन को जटिल, संघर्षमय एवं वैषम्यपूर्ण बना दिया है। युगीन साहित्यकार जिसमें निबंधकार भी सम्मिलित है, उसके लिए युगीन संघर्ष और तनावग्रस्त वातावरण से मुक्त होना असंभव है। मानव भावनाओं के प्रस्तोता और प्रतिभाशाली साहित्यकार भी युग जीवन और परिस्थितिजन्य संघर्ष से प्रभावित होते रहे हैं। यही कारण है कि निबंध लेखन को साम्प्रतिक जीवन की विषम जटिलताओं, विसंगतियों एवं संघर्षसंकुलता ने प्रभावित किया है। इन जटिलताओं का स्वरूप विश्वजनीन क्षेत्र तक परिव्याप्त है। अद्यतन परिवेश में वैश्विक जीवन के राजनीतिक मतभेद भी निबंध लेखन का परोक्षतः प्रभावित किये हैं। साहित्य की सार्वभौम सत्ता भी सम्प्रति राजनीतिक दलबंदियों से ग्रसित होकर अपने वैशिष्ट को नहीं समझ रही है। यही कारण है कि आज साहित्य के प्रतिमान भी परिवर्तित होकर साम्राज्यवाद, प्रजातंत्रवाद, सामंतवाद, पूँजीवाद, समाजवाद एवं साम्यवाद तथा आतंकवाद के स्वर ध्वनित कर रहे हैं,

जिसे साहित्यिक प्रदूषण ही कहा जा सकता है। निबंध लेखन भी एक कला है। इसमें गंभीर चिंतन–मनन के साथ उदात्त शैली अपनानी पड़ती है, परन्तु आज देखा जा रहा है कि निबंधकारों ने जीवन की व्यापकता से उद्‌भूत उन सिद्धांतों को नजरअंदाज कर दिये हैं, जो साहित्य को जीवंतता प्रदान करते हैं। प्राचीन और नव्य सिद्धांतों का संघर्ष भी निबंध लेखन में आड़े आया है। भारतीय और पाश्चात्य विचारधाराओं में निबंधकारों ने पूर्णरूपेण सामंजस्य स्थापित नहीं किये हैं, जिसके कारण अधुनातन वैज्ञानिक युग की विशिष्टताओं से उनका साहित्य सृजन वंचित रह गया है। मानव आज अधिक बुद्धिवादी और भौतिकवादी हो गया है, जिसके कारण आध्यात्मिक चिंतन का अभाव उसके साहित्य में शिथिल हो गया है। आज निबंधकारों को जीवन में संतुलन, सामंजस्य एवं समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता है, जिसका माध्यम साहित्य है, निबंध लेखन है।

युगधर्म की प्रवृत्तियों ने साहित्यकारों को तथा निबंधकारों को द्वंद्वात्मक स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है, जिसके कारण साहित्य सर्जकों ने कभी आदर्शवाद का दामन थाम लिया है, तो कभी यथार्थवादी अंकन में अपने को समर्पित कर दिया है। जीवन की संवेदनाओं से प्रेरणा ग्रहण कर निबंधकारों को तटस्थता के धरातल पर तलस्पर्शी विवेचन से निबंध लेखन करना चाहिए। निबंध साहित्य में भी पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों का प्रभाव देखा गया है, जिसमें फ्रायड, युंग, एलडर आदि के नामों से उल्लेख किया जा सकता है। कार्ल मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद से साहित्य पूर्व में ही प्रभावित हो चुका है। साहित्यकार की आदर्शवादी नैतिकता और सुरुचि सम्पन्नता आज 'आउट डेटेड' हो गई है। साहित्य की विविध विधाओं में विपुल सामग्री है, लेकिन स्वतंत्र निश्चित मानदंड का अभाव देखा गया है। आशावादी जीवन दर्शन की अतिरेकता और निराशावादी जीवन दर्शन का प्राबल्य–दोनों अवधारणाएँ एकांगी और अतिवादी हैं। दोनों के मध्य एक तीसरी विचारधारा समन्वयवादी है, जिसे सामंजस्यवादी भी कहा जा सकता है। यही साहित्य में, समाज में, राष्ट्र में और विश्व में सामंजस्य स्थापित कर सकती है।

हिन्दी निबंध साहित्य को भी स्वतंत्र स्वस्थ परंपरा है और इसका भी अनंत विकासवादी ज्ञानकोष है। साधना और तपस्या के बल पर ही साहित्य सर्जकों ने इसे गौरवशाली रूप प्रदान किया है। पारिभाषिक शब्दों की अनिश्चित स्थिति भी निबंध लेखन के समक्ष एक समस्या है। अपनी संस्कृति और साहित्यिक स्वस्थ परंपरा के साथ स्वस्थ दृष्टिकोण रखते हुए निबंधकारों को निबंध लेखन करना चाहिए, ताकि उनकी रचना कालजयी बन सके तथा सार्वकालिकता के निकष पर खरी उतर सके। भारत की प्राचीन शास्त्रीय पद्धति में अंतर्जीवन के ऐसे तत्व समाहित हैं, जो आज के प्रतिमान बनने का सामर्थ्य रखते हैं। निबंधकारों को अपने युगधर्म और विश्व के आभ्यान्तरिक तथा बाह्य वातावरण की परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए स्वस्थ मानसिकता से निबंध लेखन करना चाहिए। आज की सभ्यता और संस्कृति भी पाश्चात्य विचारधाराओं से प्रभावित है–इसको भी दृष्टिगत रखते हुए साहित्यकारों को साहित्य सृजन करना चाहिए। निबंध लेखन में भी यही प्रक्रिया और सिद्धांत लागू किया जा सकता है।

सांस्कृतिक जीवन परंपरा का अनुकरण करते हुए निबंधकारों को भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में निबंध लेखन करना चाहिए– भले ही उसमें समाजवादी शास्त्रीय दृष्टि या मनोविश्लेषणवादी पाश्चात्य दृष्टि का उन्मेष हो। साहित्य सृजन के नूतन संजीवन पथ प्राप्त करना ही निबंधकारों का अभीष्ट होना चाहिए। सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों से मुक्त होकर निश्छल अनुभूति को अभिव्यक्त करना ही निबंधकारों का सही मायने में साहित्यिक धर्म होगा, जिससे निबंध साहित्यकार को एक स्वतंत्र दृष्टि मिल सकेगी। निबंध लेखन मानवमात्र के मानस लोक के अधिकाधिक निकट होना चाहिए, ताकि लोक कल्याण और लोकमंगल की कामना सार्थक हो सके। साहित्य सृजन सदैव निर्लिप्त भाव से सम्पन्न होता है। इसलिए निबंधकारों को भी इसी निर्लिप्तता का धरातल पकड़ना चाहिए।

वस्तुतः साहित्य अपनी जीवंत संवेदनाओं में नित्य नवीन और चिरंतन तथा शाश्वत रहता है, यद्यपि उसके मूल्यांकन के प्रतिमान या मानदंड युगीन परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। जीवन की निश्छल अनुभूति और मानवीय संवेदना के धरातल पर ही निबंध लेखन का संपूर्ण वाणिज्य–व्यापार आधृत रहता है। वही साहित्य और साहित्यिक रचना अपनी सार्वभौम प्राप्त कर सकती है, जो मानवीय मौलिक मनोवृत्तियों पर आधृत होती है तथा जिसमें रागात्मक तत्व की साहित्यिक उद्‌भावना निहित होती है। निबंधकारों को अपने निबंध लेखन से मानव चेतना का विकास सांस्कृतिक मानसिक धरातल पर करने की महती आवश्यकता है, ताकि सार्वभौमिक साहित्य सृजित हो सके।

आधुनिक युग के प्रथम चरण भारतेन्दु युग में निबंध साहित्य की मूल प्रवृत्ति रचनात्मक साहित्य–निर्माण की थी। पत्रकारिता का बोलवाला था और उसके स्वतंत्र वैशिष्ट्य की परिस्थिति युगानुरूप बनी। निबंधकारों ने अपनी वैयक्तिक अभिरुचि की धुन में निबंध लेखन किया। द्वितीय चरण द्विवेदी युग में निबंधकारों की दृष्टि में निबंध विधा में विस्तार और सुधार की भावनाओं का प्रस्फुटन हुआ। भाषा परिष्करण और परिमार्जन का यक्ष प्रश्न आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और अन्य निबंधकारों के समक्ष था। निबंधकार प्राचीन संस्कृत साहित्य और पाश्चात्य अंग्रेजी साहित्य शास्त्र की विविध विधाओं से परिचित थे। आचार्य द्विवेदी के साथ अन्य निबंधकारों ने भी भाषा सुधार आंदोलन को सफल बनाया तथा रचनात्मक साहित्य को भी अनेक नव्य दिशाएँ दिखलाईं, जिससे निबंध साहित्य को भी नई दिशा मिली। सांस्कृतिक और सुधारवादी दृष्टिकोण तथा नैतिकता की अभिरुचि ने निबंध साहित्य के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया।

शुक्लयुगीन निबंध साहित्य में आचार्य शुक्ल की मौलिक मान्यताओं द्वारा निबंध साहित्य का विकास चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य साहित्यशास्त्रों का गहन अध्ययन करते हुए रस और मनोविज्ञान के सामंजस्य के धरातल पर लेखन किया और निबंध रचे। शुक्लजी ने निबंध साहित्य की भावसृष्टि और विचार–चेतना को नव्य दिशोन्मुख किया। निबंध विधा को आचार्य शुक्ल ने जीवन की व्यापकता में अधिष्ठित होने का भी अवसर प्रदान किया। स्वयं आचार्य शुक्ल ने अपने व्यक्ति वैशिष्ट्य की विविधताओं और विशिष्टताओं के फलक पर ही मनोविकार विषयक निबंध लिखे। इस प्रकार हिन्दी निबंध साहित्य का क्षेत्र व्यापक और विकासोन्मुख हुआ, जिनमें सामान्य मान्यताओं से लेकर जटिलतम समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत किये गये। हिन्दी निबंध साहित्य का सार्वभौम आधिपत्य आचार्य शुक्ल को ही मिला है, जिसके मूल में उनका गंभीर अध्ययन, गहन चिंतन–मनन एवं आत्म–चिंतन भी रहा है। आज साहित्य की अन्य विधाओं की तरह साहित्य को भी एक चिरंतन और शाश्वत दृष्टिकोण प्रदान करने की महती आवश्यकता है, ताकि निबंध साहित्य व्यापक और विशद धरातल पर अधिष्ठित हो सके।

आज साहित्य वैश्विक परिदृश्य पर अधिष्ठित है, जिसमें जीवन और साहित्य के मापदंड को विशाल, व्यापक एवं विशद भावना तथा मानवीयता की दृष्टिकोण से निरखा–परखा जा रहा है। हिन्दी निबंध साहित्य भी अपनी साधना के बल पर वैश्विक धरातल पर अपनी पहचान बनाने में सफल हुआ है। साहित्य सर्जकों को सम्प्रति अपने दृष्टिकोण उदार एवं व्यापक बनाना होगा। मानवता की निर्मिति में साहित्य सर्जकों की अहम भूमिका भूतकाल में रही है, उसे कायम रखना आज के साहित्य–सेवियों का पुनीत कर्तव्य कर्म है और दायित्व है। विश्व संस्कृति का अभिन्न अंग भारतीय संस्कृति बन चुकी है। अतएव वैश्विक धरातल पर ही भारतीय साहित्य की सही पहचान हो सकती है, क्योंकि उसके अंतर्निहित मानवीय संवेदना सार्वकालिक है, सार्वदेशिक है एवं सार्वभौमिक है। निबंध साहित्य का उत्कर्ष, उत्थान एवं प्रगति इसके साक्ष्य हैं।

निबंध साहित्य की दशा और दिशा इस तथ्य का रहस्योद्‌घाटन करती है कि निबंध साहित्य को ऐसी अर्जित शक्ति करनी है, जो मानवीय संवेदनात्मक धरातल को सुव्यवस्थित पीठिका पर अधिष्ठित कर सके। इसी में विश्व मानवता का स्वप्न भी साकार और सार्थक हो सकता है। विश्व साहित्य के समक्ष सम्प्रति भारतीय साहित्य खड़ा होने में पूर्णतः सक्षम है।

समीक्षा

सरहदों के पार दरख़्तों के साये में

सुधा ओम ढींगरा
101 101 Guymon Ct.
Morrisville, NC-27560 USA

रेखा भाटिया का नया काव्य संग्रह 'सरहदों के पार दरख्तों के साये में' मिला। एक ही बैठक में उसे पढ़ लिया। सबसे पहले तो मैं उसके शीर्षक से बहुत प्रभावित हुई। कहीं वैश्विक या प्रवासी शब्द नहीं, लेकिन फिर भी पाठकों को पता चल जाता है कि यह किसी दूर देश का कविता संग्रह है। 'सरहदों के पार दरख्तों के साये में' यानी प्रकृति के सान्निध्य में। रेखा भाटिया अमेरिका की उभरती युवा कवयित्री है और शार्लेट शहर में रहती है। दरख्तों से घिरी खूबसूरत वादी जैसे शहर में, कथक नृत्य करती हैं और चित्रकला से बहुत प्यार है। स्कूल में प्राध्यापिका हैं और साथ ही सामाजिक कार्य भी करती हैं। उनके व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का उनकी कविताओं में गहरा प्रभाव महसूस किया जा सकता है। प्रकृति प्रेम भी रेखा जी की कविताओं में झलकता है।

'जिंदगी मेरी जीवन सखी' कविता में रेखाजी ने जिंदगी को सखी के रूप में देखा है और उससे पूछती हैं–

''मैं भी बूझूँ, मैं भी जानूँ
व्यक्तित्व कैसा है तुम्हारा
कहानियाँ कई रह गईं
रिश्ते कई बना गई
कुछ कहानियों के पात्र हम
कुछ रिश्ते निभाना सिखा गई।''

जिंदगी भर हम कितने पात्र निभाते हैं। कितनी कहानियों को जन्म देते हैं। इस कविता में लेखिका अपनी सखी जिंदगी से गिला भी करती है–

''कभी चलने दो मेरी भी तुम सखी
आगे–आगे तो तुम्हीं चली रही...।''

जिंदगी का एक अलग वह 'मूल कारण' कविता में अभिव्यक्त करती है। 'सरहदों के पार दरख्तों के साये में' पढ़ते हुए महसूस किया, रेखा भाटिया बहुत संवेदनशील हैं। जन्मभूमि और कर्मभूमि के अंतर्द्वन्द्वमें उलझकर नये रास्ते तलाश रही हैं। जन्मभूमि की विसंगतियों, विद्रूपताओं, सरकारों के लिए चिंतित हो उठती हैं। कहीं समाज, मानवजात, पुरुषसत्ता से शिकवे– शिकायतें हैं तो कहीं रूढ़ियों, झूठी मान्यताओं को बदलना चाहती हैं।

कर्म भूमि में मानवीय भेदभाव और नस्लवाद उन्हें दुखी करता है। वर्षों से अमेरिका में रह रही हैं, अमेरिका की जहाँ प्रकृति का वह आनंद लेती है, वहीं अन्याय के खिलाफ भी उनकी आवाज बुलंद होती है। 'स्वागत के आतुर' कविता में वे वसंत ऋतु का स्वागत करती है–

''सजने दो वसुंधरा को स्वर्ण वसंत से
दमकने दो धरती को सूर्य–रश्मियों से
खिल आएँगे पुष्प, महक जाएगी बगिया
बज उठेगा संगीत भौंरों की गुनगुनाहट से।''

तो कहीं 'प्रकृति से छिपा लूँ वसंत बहार' कविता लिखती हैं–'बहारों बैठो आसपास', 'बावरा मन मौसम', 'पंछी सिखलाते' कविताएँ भी प्रकृति को समर्पित हैं। 'क्या रोक पाओगे यह खेल' कविता में रेखा जी युद्ध से पीड़ित हो कहती हैं–

''हथियारों के पहाड़ों नीचे खोदो
कहीं घायल पड़ी मिलेगी मानवता
x x x
किसी झंडे में छिपा छलनी शरीर
कई दिन रातें बिलबिलाते
नेताओं से सवाल पूछ–पूछ चिल्लाते
नया क्या है यह सदियों का खेल
राजे रजवाड़े गए प्रजा की वही लड़ाई

अपनी जात से तो रेखा भाटिया बेहद खफा हैं, क्यों न पूछा अपना हाल...कविता में लिखती है–

''क्या महज साँस लेता जिस्म...
क्या सही मायने हैं स्त्री के
ग ग ग
आत्मा मरने लगी अब मेरी
छत–दीवारें, गली चौबारे
हृदय का चौराहा
सब हुए हैं अब लहूलुहान
किन्तु कबतक चुप बैठूँगी
ग ग ग
शर्मिन्दा तुम नहीं पुरुष मैं हूँ
क्यों न पूछा अबतक अपना हाल
देवी, शक्ति, मूर्ति से निकल बाहर
तीन सौ पैंसठ नारी दिवस मना।''

'मुखौटा' कविता में रेखाजी भगवान से कहती हैं कि मुझे दुनियादारी का नकली मुखौटा क्यों नही दिया?मैं क्यों बाजारवाद और समाज में व्याप्त सौदेबाजी से पिछड़ जाती हूँ। बेटी और स्त्री को लेकर रेखा जी ने कई कविताएँ लिखी हैं। अपनी ही जात की प्रतिष्ठा का सम्मान करते हुए स्त्री की अस्मिता, अस्तित्व पर बड़े धड़ल्ले से लिखा है।

कई विषय और बातें ऐसी होती हैं, जिनपर कहानी लिखकर भी अभिव्यक्ति की संतुष्टि नहीं होती, पर कविता में बड़ी सहजता से और सरलता से स्वाभाविक ही उन भावों का संचार हो जाता है। रचनाकार की दृष्टि समाज के उन कोनों तक भी पहुँच जाती है, जिनकी अवहेलना कर वर्जित कर दिये जाते हैं। कवि अपनी कल्पना से नई राहें तलाशता है, हृदय को छूकर जीवन को सतरंगी कर देता है।

'सरहदों के पार दरख्तों के साये में' कविता संग्रह में रेखा भाटिया ने तकरीबन जीवन के सभी रसों और रंगों में भीगी कविताएँ लिखी हैं। कहीं मन की पीड़ा 'रिश्ते झरे पत्ते', 'वह गम कभी छिपा नहीं', 'खुरदरी–सी हो गई, तो कहीं समाज में हो रहे अन्याय के प्रति आक्रोश 'मैं स्त्री बन पैदा हुई' में टपकता है। नारी को दोयम दर्जे का समझे जाने से वह तड़पी है 'संसार बदलने चली है बेटी' कविता में। कहीं कवयित्री 'भविष्य में आनेवाले कल की नींव' का जिक्र करती है और कहीं रेखा जी पाठक को 'चलिए अतीत में चला जाए' कविता में अपने इतिहास को खंगालने के लिए बाधित करती है। प्रेम, बेवफाई, राष्ट्रप्रेम, अंतिम सत्य खोजती 'देह यात्रा', हर दिन त्योहार, पिता, माँ, बेटी, रिश्ते, अलौकिक प्रेम, हर विषय पर इस संग्रह में कविताएँ हैं। कुछ कविताएँ दिल को छूती निकलती हैं, कुछ विवेक को झकझोरती हैं। कई कविताएँ सोचने पर बाध्य करती हैं। 143 पृष्ठों और 72 कविताओं का संग्रह 'सरहदों के पार दरख्तों के साये में' पठनीय है और कवयित्री रेखा भाटिया का यह पहला प्रयास है, जो सराहनीय है।

शिवना प्रकाशन–7562405545

समीक्षा

साँच की आँच से निकली कविता 'इतिहास के अभागे'

अरुण कुमार वर्मा
जवाहर नवोदय विद्यालय, पदमी,
मंडला (मप्र.) मो.–9754128757

'इतिहास के अभागे' राजकमल प्रकाशन से 2008 में प्रो. दिनेश कुशवाह का काव्य संकलन है। इस काव्य संकलन के माध्यम प्रो. कुशवाह सामाजिक ताने–बाने से झूठे महिमा मंडन के आवरण को भेद कर हासिए पर ठेले गये इतिहास के वास्तविक शिल्पी को रेखांकित किया है। कवि अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाकर आँखिन देखी सच्चाई को कहने में जरा सा विचलित नहीं हुआ है। कवि ईश्वर के अस्तित्व को चुनौती देते हुए यह बताता है कि ईश्वर के अदृश्य होने से कुछ लोग यह प्रचारित करके सबसे अधिक फायदा लेते हैं कि ईश्वर सब जगह है और सबसे अधिक ठगे जाते हैं, वे लोग जो यह विश्वास करते हैं कि ईश्वर सब जगह है। सामाजिक विसंगतियों पर कवि का विद्रोह फूट पड़ता है। वे जाति को इतिहास का सबसे बड़ा झूठा मानते हैं, जो समाज में सबसे बड़ा हो गया है। कवि इसे राष्ट्रीय शर्म घोषित करने का आह्वान करता है। शहरी भाग दौड़ से दूर गाँव की गलियाँ, पीपल, पनघट, पपीहे, टिटिहरी तथा दाने–भूसे की याद से यह काव्य संकलन हमारा नाता जोड़े रहता है। वर्तमान में बदलाव को कवि दो रूपों में देखता है। एक तरफ बदलाव की चकाचौंध है तो दूसरी तरफ वही पुराने दिन वही पुराना राग ''भूखा ही मनुआ सो जाए/ नया जमाना आए जाए/ देह जली है पेट जला है/ अपना क्या कुछ भी बदला है?'' यह संकलन अभागे कर्मवीरों को उनका सम्मान दिलाने के साथ सभी वादों से ऊपर उठकर मानव धर्म की स्थापना का सफल प्रयास है।

विवेच्य कविता 'इतिहास में आगे' 50 कविताओं का संकलन है। इसके माध्यम से प्रो. दिनेश कुशवाह जी सामाजिक संरचना का एक विशाल फलक निर्मित किये हैं। इन्होंने भारतीय समाज के ताने–बाने को बहुत ही सूक्ष्मता से जाँच–परख कर उसकी सच्चाई को सामने लाया है। वर्तमान साहित्य जगत में सच्चाई को जितनी निर्भीकता से इन्होंने बयाँ किया है, इतनी निर्भीकता दिखानेवाले साहित्यकारों का अभाव है। इनकी यह शैली इन्हें कबीर और मुक्तिबोध के समानांतर खड़ा करती है। संकलन की पहली कविता 'इतिहास में अभागे' आदि से अंत तक शोषण की दासता का एक दस्तावेज है। कवि उन अभागों की चर्चा करता है, जो भारत के सच्चे शिल्पी थे, वे इतिहास में कहीं नहीं है। जो श्रीमंतों की हाथियों से पैरों तले कुचल दिये गये, जिनकी हड्डियों से आयुध बने, वे बच्चे जो स्कूल पढ़ने गये और इस जुर्म में भालों की नोंक पर टाँग दिये गये, हमारी बहुएँ और बेटियाँ, जिन्हें पहली सुहागरात किसी राजा–सामंत या मंदिर के पुजारी के साथ बितानी पड़ी इतिहास उनकी घटना से चुप है। उन अभागों की याद को कविता अपने आगोश में समेटे हैं। एक उदाहरण देखिए–

''वे अभागे कहीं नहीं है इतिहास में
जिनके पसीने से जोड़ी गई
भव्य प्राचीरों की एक–एक ईंट
पर अभी भी हैं मिश्र के पिरामिड
चीन की दीवार और ताजमहल

x x x

पुरातत्त्ववेत्ता जानते हैं।
जिनकी पीठ पर बने
बकिंघम पैलेस जैसे महल
वे अभागे भूत–प्रेत–जिन्न
कुछ भी नहीं हुए इतिहास के।''

कवि सामाजिक संरचना के दूषित परिणामों के लिए ईश्वरीय अस्तित्व पर प्रश्न खड़ा करता है। ईश्वर की होने की अवधारणा के पीछे कुछ लोग इसके फायदे लेते हैं तो कुछ लोग ईश्वर के होने के विश्वास में ठगे जाते हैं। 'ईश्वर के पीछे' कविता इस तरह की बहुत सारी धारणाओं से पर्दा उठाती है–''बुद्ध के इतने दिनों बाद अब यह बहस बेमानी है कि/ ईश्वर है कि नहीं है/ अमर है भी तो उसके होने से दुनिया की बदहाली पर/ तबसे लेकर आजतक कोई फर्क नहीं पड़ा।'' 'हर औरत का एक मर्द है' कविता भी ईश्वरीय अस्तित्व पर प्रश्न उठाती है–'कुआँ बावड़ी पोखर नदियाँ मर सीताएँ पाटी/ किस करुणाकर करुणानिधि की वत्सल छाती फाटी।' ईश्वर के होने का प्रचार लोगों के फायदे तो नहीं कर पाया, बल्कि भाग्य के भरोसे जीने की आदत जरूर डाल दिया है। 'उजाले में आजानुबाहु' कविता इसकी पुष्टि करती है–'हर दुर्भाग्य को राम रचि राखा किसने प्रचारित किया/ लोगों में क्यों डाली गई भाग्य के भरोसे जीने की आदत?' कवि ईश्वरीय अवधारणा विरोध जाहिर करता है। वह कहता है कि ईश्वर हमेशा शक्तिशाली लोगों का कुछ नहीं बिगाड़ पाता। 'बहेलिया को नायक बना दिया' कविता में ईश्वर को ही सबसे बड़ा बहेलिया माना है–'ईश्वर सबसे बड़ा बहेलिया है/ और दीन हीनों को सताकर/ मारनेवाले उसके कृपापात्र।' 'ईश्वर के पीछे' कविता ईश्वर के अस्तित्व पर बड़ी बहस करती है। कवि लिखता है ईश्वर के अदृश्य होने के कई फायदे हैं, कोई उस पर जूता नहीं फेंक सकता, भृगु की तरह लात नहीं मार सकता, उसपर झुंझलाता तक नहीं। ईश्वर की खामियों को दर्शाते हुए कवि लिखता है–

''ईश्वर की सबसे बड़ी खामी यह है कि
वह समर्थ लोगों का कुछ नहीं बिगाड़ पाता
समान रूप से सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान
प्रभु प्रेम से प्रकट होता है
पर घिनौने बलात्कारियों के आड़े नहीं आता
अपनी झूठी कसमें खानेवालों को
लूला लंगड़ा अंधा नहीं बनता
आदिकाल से अपने नाम पर
ऊँच–नीच बनाकर रखनेवालों को
सन्मति नहीं देता
नेताओं की तरह उसके आस–पास
धूर्त, छली और पाखंडी लोगों की भीड़ जमा है।

न जाने कितनी भोली भाली जनता ईश्वर के नाम पर ठगी जाती है। कितने मासूम लोग पेट काटकर धन और मन को समर्पित कर देते हैं और वे ठगे जाते हैं। ईश्वर का आसान तक नहीं डोलता। 'ईश्वर को कौन बनाएगा' कविता में कवि कहता है कि ईश्वर को कलम, कूंची, छेनी–हथौड़ी वाले कारीगर ही बनाते हैं और बन जाने के बाद उसके द्वार पर अछूत और अकिंचन बनकर खड़े रहते हैं। कवि लिखता है तुम्हारे घर देर नहीं अंधेर ही अंधेर है। इनका दृष्टिकोण कबीर के बहुत करीब आ जाता है। वे भी आतमि खबर रखने की बात करते हैं और कवि भी कहता है कि आदमी अपना ख्याल खुद रखे। इसका उदाहरण देखिए–

''ईश्वर के पीछे मजा मार रही है
झूठों की एक जमात
एक सनातन व्यवसाय है
ईश्वर का कारोबार
महाविलास और भुखमरी के कगार पर
एक ही साथ खड़ी दुनिया में
आज भले न कोई नीत्शे

यह कहने का समय आ गया है कि
आदमी अपना ख्याल खुद रखे।''

'इतिहास में अभागे' कविता सामाजिक विसंगतियों और कुठाराघात करती है। एक तरफ जहाँ जातीयता को सबसे बड़ा अभिशाप बताती हैं, वहीं दूसरी ओर वर्तमान में उपभोक्तावाद और बाजारवाद को समाज का सबसे बड़ा कोढ़ करार देती है। कवि समाज में व्याप्त जातीय संघर्षों से दुखी है। मनुष्य द्वारा बनाई गई जातीय झूठ से समाज उबर नहीं पा रहा है। अपने को बड़ा बताने के चक्कर में मानव से निम्न होता जा रहा है–'एक बात जान लो/ आँच साँच पर ही आती है/ झूठ का कुछ नहीं बिगड़ता/ और जाति है सहस्राब्दियों का सबसे बड़ा झूठ/ जो सच से भी बड़ा हो गया है। कवि सच्चाई पर अपना रोस व्यक्त करता है–'युगों से हम उन्हें देवता की तरह पूजते हैं/ पर वे आजतक हमें आदमी नहीं मानते हैं।' इन्होंने जातिवाद के दूषित परिणामें का उल्लेख इस संकलन में किया है। किस तरह से एक व्यक्ति दूसरे से अपने को बड़ा साबित करने के लिए जाति का सहारा लेता है। दुर्भाग्य है भारत देश का यहाँ परिश्रम करनेवाले नीच कहे जाते हैं। इस संकलन की कविता 'आज भी खुला है अपना घर फूँकने का विकल्प' में जातिवाद के अनुयायियों की खूब खबर ली है। वे लिखते हैं–

''जाति क्यों है कुछ लोगों के लिए सोने का तमगा
जिसे वे सीने पे सजाए
छाती फुलाए घूमते रहते हैं
और जाति क्यों है कुछ लोगों के लिए
सफेद कुष्ठ का दाग
जिसे वे हर घड़ी छिपाते फिरते हैं
आखिर सरकार
क्यों नहीं घोषित करती जाति को राष्ट्रीय शर्म
और अन्तर्जातीय प्रेम विवाहों को राष्ट्र सम्मान।''

'इतिहास के अभागे' संकलन बदहाल होती लोकतंत्र की व्यवस्था पर भी अपनी आवाज बुलंद की है। आदमी तब आदमी नहीं प्रजातंत्र के रहनुमाओं के लिए सिर्फ वोट समझा जाता है। लोकतंत्र में बहुत कुछ बदला नहीं है, बदला है तो बस स्वरूप बदला है शोषण की गाथा वही है–'मैं कबीर से पूछने गया/ क्या करूँ दादा/ ब्रह्मण से लेकर शूद्र/ गाँधी से लेकर लोहिया/ एम एन राय से लेकर मायावती/ सबसे गुहार लगाई/ पर जो तब पिस रहे थे चक्की में/ आज भी पिस रहे हैं।' कवि लोकतंत्र ने हमें क्या दिया उसकी चर्चा करते हुए लिखता है–

''पचास साल के लोकतंत्र पर गिरी है
वंशवाद गुंडागिरी पैसा और जाति की गाज
कोढ़ में खाज की तरह के
अंधे बाँटते हैं रेवड़ी
और चीन्ह–चीन्ह कर देते हैं।''

वर्तमान समाज बड़बोलेपन की गिरफ्त में आ गया है। धर्म, राजनीति, साहित्य सभी जगह बड़बोलपन की लिप्सा अपनी मायाजाल में सबको फँसा लिया है। एक समय था जब साहित्यकार अपने नाम और परिचय का कहीं जिक्र नहीं किया करते थे। धर्म में लोगों के कल्याण की भावना थी यश की लालसा कम थी। राजनीति में लोग सेवा करते थे, आज पटिया पर नाम के लिए ज्यादा परेशान हैं। कथनी और करनी में अंतर आ गया है। भाषणों में कुछ है जीवन में कुछ अलग। मूल्यों का इतना ह्रास नहीं था–'बापू के मुँह में राम था बगल में छूरी नहीं था/आज भी गवाह है वरवरराव कि/कविता करता था कबीर/ पर उसके जीवन और कविता में दूरी नहीं थी।' प्रस्तुत संकलन की कविता 'उजाले में अजानुबाहु' इसी बड़बोले लोगों की खबर लेती है–

बड़प्पन का ओछापन संभाले बड़बोले
अपने मुँह से निकली हर बात के लिए
अपने आपको शाबाशी देते हैं
जैसे दुनिया की सारी महानताएँ
उसकी टाँग के नीचे से निकली हों
कुनबे के काया–कल्प में लगे बड़बोले
विश्वकल्याण से छोटी बात नहीं बोलते।''

बड़बोले दुनिया की हर सफलताओं में शामिल है और हर असफलता के लिए दूसरे को कोसते हैं। गाँव की पंचायत में देश की पंचायत की चर्चा लाकर बड़बोले देशकाल से परे बहुत दूर की कौड़ी ले आते हैं। 'उजाले में आजानुबाहु' देश के हर क्षेत्रों में बड़बोलों के कब्जे को दर्शाती है–'सिर्फ बोलते ओर बोलते हुए/ वाणी के बहादुरों ने/ लोकतंत्र पर कब्जा कर लिया/ और बाँट दिया उसे/ जनबल और धनबल के बहादुरों में/ और अब तीनों मिलकर/ देश पर मरने वालों पर पदक बाँट रहे हैं।'

'इतिहास के अभागे' काव्य संकलन शहरी दमघोंटू हवा, मल्टीनेशन कंपनियों के मायाजाल, कार्पोरेट जगत की चकाचौंध तथा उपभोगतावादी संस्कृति ने गाँव के हासिए पर ला दिया है। आज जिस तरह से गाँव की अपेक्षा हो रही है, एक सामान्य जन भी जिस हिकारत से शहरों की ओर ताक रहा है, ऐसे में भारत गाँवों का देश कैसे रह पाएगा। कवि का मन गाँव में रीझता है, लेकिन गाँव की समस्याएँ और गाँव के भोले–भाले लोगों का शोषण भी कवि ने अपनी कविता में व्यक्त किया है–'मुझे गुस्सा आता है अपने पिता, दादा, परदादा पर/ कि वे इतने सीधे क्यों थे?बाहुओं में बला की तातक लेकर वे इतने बेचारे क्यों थे?सोचते–सोचते सर्कस का स्ट्रिंगर मेरे जेहन में/ आतंक की तरह छा जाता है/ और मेरा गाँव मेरा शहर उसी आतंक में समा जाता है।' कवि चिंतित है कि आज गाँव से गाँव की चीजें लापता होती जा रही हैं, जिससे गाँव की अपनी अलग पहचान थी। इस संकलन की कविता 'मामा के गाँव का गोबर' तथा 'शाप मुक्त होने का कौन सा तरीका है' में अपने गाँव के प्रति लगाव की व्यक्त करता है। एक उदाहरण देखिए–

''शहर मुझे नहीं रिझा पाता
उचटा मन गाँव में भागा–भागा जाता है
जहाँ मैं बीनता था बचपन में आम के टिकोरे
ढोता था गेहूँ
तोपता था भूँसा।''

कवि कार्पोरेट जगत के वर्चस्व को अच्छा नहीं मानता। उपभोक्तावादी संस्कृति इसी की देन है। आज हमारे सारे मूल्य अर्थ की भेंट चढ़ते जा रह हैं। संबधों में भी हम अर्थ को खोजते हैं। धरती और गगन को भी इनसे खतरा है–'नव धनाढ्य ग्लोबल इन्द्रों से/ धरती गगन बचाएँ कैसे?अर्थ के बटोर की स्पृहा हमें अपनों से अलग कर रही है। आज भाई–भाई में अर्थ की होड़ लगी है। हम सिर्फ नाम के भाई–भाई संबंधि रह गये हैं–

''बस गये दिल में हमारे सेठ मल्टीनेशलन
बिलबिलाता भूख से भाई बेगाना हो गया।''

उजाले में अजानुबाहु कविता में कवि कार्पोरेट जगत के लोगों के द्वारा पृथ्वी के दोहन की बात कही है। वे कुछ भी नहीं छोड़ना चाहते अगली पीढ़ी के लिए–

''पृथ्वी को गाय की तरह दुहते–दुहते
अब वे धरती का एक–एक रोआँ
नोचने को तुले हैं
हमारे समय के कॉरपोरेटी कंस
कोई संभावना छोड़ना नहीं चाहते
भविष्य की पीढ़ियों के लिए

अतिशयोक्ति के कमाल भरे
बड़बोले इनके साथ हैं।''

कवि व्यवस्थागत खामियों से क्षुब्ध है। शासनसत्ता पर काबिज लोग अपना हित साधने में लगे हैं। नीतियाँ अपने लोगों के हित को ध्यान में रखकर बनायी जाती हैं–'अब ठगनी नैना झपकाती है तो/ कालगर्ल बना दी जाती है/ राजतंत्र में राजा का बेटा राजा होता है/ लोकतंत्र में नेता का बेटा नेता/ मंत्री का बेटा मंत्री/ राजे–रजवाड़ राज नेता।' इसके विपरीत 'मामा के गाँव का गोबर' कविता में कवि दुख व्यक्त करता है कि गाँवों के वो लाल जो आदर्श थे, वे कुछ बन नहीं पाये, बस मामा के गाँव का गोबर बनकर रह गये–

''आज देखता हूँ
वे सारे लाल उसी मिट्टी में खप गये
हर नौजवान जो वहाँ
लड़ने पढ़ने और खेती करने में आदर्श था
नहीं बन सका प्रोफसर डॉक्टर
इंजीनियर या धनी किसान
बस मामा के गाँव का गोबर हो गया।''

कवि कामकाजी महिलाओं की अस्मिता को लेकर चिंतित है। जिस तरह से वह हर जगह शोषण का शिकार है, यह धारणा किसी भी समाज के विकास के सोपान गढ़ने में बाधक होगी। उसकी आवाज को बेहयायी के हथियार से दबा दिया जाता है। कवि यह प्रचारित करना चाहता है कि उसी ने तो इस दुनिया, आग, हवा और पानी को सिरजा है–'निर्लज्ज लोगो! दुनिया, आग, हवा और पानी/ स्त्री ने नहीं बनाया फिर भी/ उसी के दम पर सिरजी है दुनिया/ उसी की जतन से जिंदा है आग/ उसी की साँसों से महकती है हवा/ उसी की आँखों से बचा है धरती का पानी।' कवि कर्म को जीवन का मूलमंत्र मानकर उसी को प्रचारित करता है। संकलन की सभी कविताओं की भावधारा बहुत ही सहज भाषा में जीवन की सच्चाई का प्रचार करती प्रवाहित होती है। कवि की मस्ती और फक्कड़पन तथा हाजिरजवाबी अंदाज कविता को रोचकता प्रदान किये हैं। सरल शब्दों में बड़ी बात कहने का अंदाज कवि का निराला है–

''बिना कर्म का मिले न चेला, जग में एक अधेला
अपनी करनी गुरु पायेगा, अपनी करनी चेला
लोग यहाँ आयेंगे साधो/ जहाँ लगेगा मेला
जिसका सौदा अच्छा होगा, बेचेगा अलबेला
चित्त पर चढ़कर जिसकी कविता, बोले वही कबीर
क्या काशी क्या मगहर साधो जब मन हुआ फकीर।''

निष्कर्षतः 'इतिहास में अभागे' काव्य संकलन अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने का एक सफर है। इसमें सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विसंगतियों का बहुत ही निर्भीकता से उठाया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जिस साहित्य के लक्ष्य की कही है, यह संकलन उस लक्ष्य की ओर पहुँचने का सफलतम प्रयास है। जिस फक्कड़ाना मस्ती से कवि ने ह्रास होते मूल्यों की स्थापना के संकेत दिये हैं, यह लीक से हटकर चलने की अलग शैली बन पड़ी है। संकलन की एक–एक कविताएँ साँच की आँच से तपकर निकली हैं। सच्चाई तो इतनी बेबाकी से कम ही कवियों ने कह सकने की हिम्मत जुटाई है।

'इतिहास में अभागे', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

कविता →

शैलेन्द्र कुमार चतुर्वेदी
94 चौबान मोहल्ला
फिरोजाबाद (उ.प्र.)

आया बसंत बदल गई ऋतु

उड़ उड़ अम्बर से
जब–जब धरती पर
बसंत ऋतु जब आती है
देख बाग बगीचों को
अब भँवरा मुस्काता है
फूलों की सुगंधित कलियों पर
जाकर प्रेम गीत सुनाता है
अपने मन की बातें कहने में
बिल्कुल नहीं शरमाता है
गेंदा गमके महक बिखेरे
उपवन का आभास दिलाएँ
बहे बयारियाँ मधुरम मधुरम
प्यारी कोयल गीत जो गाए
ऐसी बेला में उत्सव होता
जब बाग बगीचे तान लगाए
आया बसंत बदल गई ऋतुएँ
बसंत यौवन शृंगार सजाए
उड़ उड़ अम्बर से
जब–जब धरती पर
बसंत ऋतु जब आती है

रमेशचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
बेजलपुर, अहमदाबाद
मो.–9726930003

गीतिका

कौन जादू कर गया है
प्यार से दिल भर गया है
वह न आता अब गली में
बदनामी से डर गया है
मारते हो क्यों उसे अब
वह तो कब का मर गया है
कह न सकते चोर उसको
दिल की चोरी कर गया है
कत्ल करके कत्ल का
आरोप उस पर मढ़ गया है
वह डुबाने से न डूबा
डूबकर वह तर गया है
समय उठने में लगेगा
नजर से वह पड़ गया है
बात मत करना धरम की
प्यार में वह पड़ गया है
क्या उचित है शोक करना
वह तो अपने घर गया है
देश पर बलिदान होकर
नाम अपना कर गया है।

2

जिन्दगी कितनी लाचार है
रिश्ता–नाता भी व्यापार है
निर्धनों का हाल क्या पूछना
किसका किससे सरोकार है
चलन मदिरा का इतना बढ़ा
जिंदगी लग रही भार है
व्यक्ति सीमित है परिवार तक
देश दुनिया से न प्यार है
बात संतों की अच्छी लगे
थोथा हरेक व्यवहार है
कौन सुनता किसी की यहाँ
बोलना सबका अधिकार है
झोपड़ी देख हँसते बहुत
हँसना भवनों का अधिकार है
अपनों में भी तो अपने नहीं
जटिल निर्मम बहु संसार है
भूल है कहना, अच्छा बुरा
जिसका जैसा भी किरदार है

समीक्षा

आनुभूतिक संवेदना का उदात्तीकरण

डॉ. रणजीत पटेल
अलकापुरी, भगवानपुर
मुजफ्फरपुर (बिहार), मो.–9431147528 3

नवगीत ने अपने राग–वलय में बदल रे जीवनगत संपूर्ण को मनुष्य के साथ संश्लिष्ट कर एक प्राकृत सामूहिकता की तरह आविष्कृत किया है। नवगीत का बिम्बात्मक प्रत्यय भारतीय जीवन के सातत्य के प्रत्यक्षीकरण है। नवगीतों ने अपनी रागात्मक और ज्ञानात्मक आत्मसत्ताओं के विस्तारीकरण में भारतीय राष्ट्र के ऐतिह्य जातीय स्मृतियों के साथ समकालीन सांस्कृतिक संक्रमणों और तज्जन्य विरूपीकृत समाज के अंतर्विरोधों को अपने भास्कर भावलोक में समेटकर भारतीय समाज बदलते संबंधों को जीवन्त प्रक्रिया की तरह आविष्कृत ही नहीं किया है, बल्कि इसे सजीव रचना पिंड के इन्द्रिय संवेद्य संवेगों से सम्पूरित भी किया है।''

'आनुभूतिक संवेदनाओं को रागात्मक अंतश्चेतना का शाब्दिक प्रति संसार'' लिखते हैं। इस प्रकार कवि की बिम्बात्मक चेतना का प्रगतिशील सूक्ष्म कल्पनात्मकता के माध्यम से इन्द्रिय संवेद्य संपूर्ण बाह्य–प्रत्यक्ष, आनुभूतिक संवेदना स्मृत्याभास और अनुकूलित सौंदर्येच्छा से समन्वय कर अप्रत्यक्षतः मानस अवकाश में शब्द और अर्थ की सघनता के द्वारा एक समानांतर दुनिया की रचना करती है, जिसे नवगीत की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार नवगीत आनुभूतिक संवेदना, प्रतीक–बिम्ब, व्यंजना, सामाजिक सरोकार और अभिव्यक्ति का सम्प्रेषणीयता के समन्वय एवं संतुलन का ऐसा शब्द रूप है, जिसमें प्रगतिशीलता के साथ लोकमंगल की सकारात्मकता का विशेष महत्व स्वतः उद्घाटित होता है। इसी क्रम में श्रीमधुकर अष्ठाना की दो नवगीत कृतियों का आकलन– मूल्यांकन उचित होगा।

एक तथाकथित साहित्य–मर्मज्ञ से सुना था कि वरिष्ठ नवगीतकार श्रीमधुकर अष्ठाना लेखन ने क्षेत्र में देर से आये। यदि यह सही है तो भी विशेष महत्वपूर्ण नहीं है और मैं कहूँगा कि अष्ठानाजी ने इस प्रचलित कथन को चरितार्थ किया है–''देर आये, दुरुस्त आये।'' यद्यपि यह सत्य नहीं है। अष्ठानाजी वर्ष 1960 से गीत के क्षेत्र में सृजन कर रहे हैं और आपात्काल से तो वे पूरी तरह से नवगीत ही लिख रहे हैं। हाँ, उनकी कृतियों का प्रकाशन विलंब से हुआ। आपातकाल तथा उसके उपरांत की परिस्थितियों पर रचित नवगीत उनकी प्रथम कृति 'वक्त आदमखोर' में संगृहीत है। अष्ठानाजी भीड़ से बिल्कुल अलग दिखाई पड़ते हैं और समय–यथार्थ, प्रकृति एवं प्रतिपल बदलते हुए सामयिक परिवेश के प्रति सजग हैं। उनकी सर्जना में यथार्थ को अपनी मौलिकता के साथ व्यक्त करने की छटपटाहट है। उनका गीत–मन निश्छल है और वर्तमान युग सत्य अभिव्यक्त करने हेतु भावनात्मक रूप से सुदृढ़ है। अष्ठानाजी के पास अपनी माटी है, जिसमें लगी फसलें लहलहा रही हैं। इसके साथ ही अष्ठानाजी के सृजन में ग्रामीण एवं नगरीय संस्कृति का अद्भुत मिश्रण है। गीतकार के व्यक्तित्व का मूल तत्व उसका निजत्व है, जो मानवीय संवेदना के प्रति तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों की ओर इंगित करती है।

डेढ़ दर्जन से अध्कि गीत–नवगीत संग्रहों में से 'खाली हाथ कबीर' और 'पहने हुए धूप के चेहरे' के ही संबंध में यहाँ समीक्षित किया जा रहा है। उक्त दोनों संग्रहों की अनुभूति तत्व, आदिम राग एवं लोकजीवन की मार्मिक छवि के स्वर हैं। इतना ही नहीं प्रीति के रागात्मक–संस्पर्श एवं अमीरी–गरीबी की द्वंद्वात्मक स्थितियाँ भी चित्रित की गयी हैं। प्रश्न उठता है कि वर्तमान समय में 'धूप के चेहरे हैं?' तो 'खाली हाथ कौन है?' कबीर या अष्ठाना जी?शायद दोनों हैं। अमूमन साहित्यकार खाली हाथ ही होते हैं। तुलसी और निराला भी। कहना न होगा कि कबीर यहाँ रूढ़िवादिता से टकराते हैं, वहीं अष्ठानाजी समय–समय से टकरा रहे हैं।

''लिख न सके हम/ सत्तर सालों में। अपनी तकदीर।
सारे जग की खैर मनाते। हम रह गये फकीर।
बाबा ने जो दी कामरिया/ चढ़ा न दूजा रंग। बीत गया!
अब तक का जीवन/ गाते वही अभंग/ छोड़ गये/
सब रिश्ते नाते/ खाली हाथ कबीर।'' (खाली हाथ कबीर)

कबीर को प्रतीक के रूप में प्रयोग कर मधुकर अष्ठानाजी ने जो प्रतीकात्मक भाषा में कहा है–वही युग सत्य है, खरा–खरा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों के उपरांत भी हम जहाँ खड़े थे, वहीं पर एक–दो कदम आगे–पीछे चलकर हम खड़े हैं। हम चार कदम आगे जाते हैं, तो पाँच कदम पीछे आ जाते हैं। समस्याएँ और बढ़ जाती हैं। जीवन–संघर्ष कई गुना बढ़ जाता है। ऐसी दशा में कवि की छटपटाहट भरी व्यथा–कथा स्वाभाविक है। इस प्रगति की छलना से अष्ठाना जी का मोहभंग हो गया है। इन्होंने कोरी कल्पना और सियासती छद्म से किनारा कर लिया है। बाजारवाद और उदारीकरण का परिवेश उन्हें रास नहीं आया। वैसे भी आत्म–जाग्रत रचनाकार भौतिक संसाधनों के लिए राजनीतिक चाटुकार नहीं बन सकता। वह अपने एकांत में भी आँखें खुली रखकर वैश्विक परिवर्तन और मानव मूल्यों के क्षरण को निर्भय होकर लिखता है। संत कुंभन दास ने यूँ ही नहीं कहा था–''संतन को कहा सीकरी सों काम।'' अष्ठानाजी भोजपुरी गीत–नवगीत संग्रहै सिकहर से भिनसरा'' से चलकर 'पहने हुए धूप के चेहरे' तक की लंबी यात्रा तय कर चुके हैं फिर भी उनकी लेखनी पर थकान के चिह्न नहीं है और अनवरत नवगीतों में नई दिशाओं को प्रकाशित करने में व्यस्त है। उन्होंने जो अनुभव किया है, देखा है और भोगा है, वही लिखा है। यथा–

''मेड़ खा गयी/ खेत प्रणय के/ बरस–बरस के पल
करता रहा/ समय आजीवन। संबंधों के छल/
कण–कण में थीं/ मृदु मुस्कानें/ वे दिन और रहे।''

(खाली हाथ कबीर)

उक्त रचना में अष्ठाना जी परंपरा और अतीत का मूल्यांकन करते हुए कहना चाहते हैं कि यह विडम्बनाओं का समय है और ऐसी स्थिति में कथनी और करनी में कहीं मेल नहीं है, यहाँ तक कि इससे साहित्य भी अछूता नहीं है तथा अर्थ और राजनीति का चाटुकार एवं पिछलग्गू हो गया है। सामाजिक संबंधों में छल और टकराव है। समाज में आदमी नकली मुस्कानों के मुखौटे लगाकर जीने को विवश है। असुरक्षा, ईर्ष्या, द्वेष, भय, चिंता, मानसिक विकार एवं हिंसा का शिकार है, जो मानव की सीधी सादी जिंदगी में कोहराम मचा रहे हैं। एसे मूल्यहीन कटु समय को अष्ठानाजी अपनी रचनाओं के माध्यम से बैरोमीटर की तरह अभिव्यक्त कर रहे हैं–

''फूल हैं सुखे हुए/ अनुभूतियों के/ गंध हम लाये कहाँ से/
दर्द के काँटे/ उगे हैं/ हृदय की अमराइयों में। दिख रहे/
हर पल अंधेरे/ वक्त की परछाइयों में/ इन्द्रधनुष खंडित हुए/
अनुभूतियों के/ रंग हम लाये कहाँ से।'' (खाली हाथ कबीर)

दर्द के काँटे, वक्त की परछाइयों में, रचनाकार को बार–बार चुभ रहे हैं, मन बचैन है। सब कुछ बासी लग रहा है। हृदय की अमराइयों में काँटों का उगना सिद्ध करता है कि समस्याओं और विभिन्न चिंताओं के अम्बार में कवि को सब कुछ मूल्य–क्षरण और सांस्कृतिक पतन का बोध कराता है। कहना न होगा कि मधुकर अष्ठाना जी के नवगीतों में स्वयं भागी यथार्थ संवेदना का प्रचुर राग है, जो बार–बार उनकी चेतना पर प्रहार करता है। फिर भी वे सामयिक संवेदना से मुठभेड़ करना भलीभाँति जानते हैं, किन्तु शब्दों की आग नहीं उगलते, नारेबाजी से दूर ही रहते हैं, फिर भी रागात्मकता की मशाल

लेकर चौराहे पर खड़े हैं–
''मूँगफली तक/ नहीं मिले/ बदाम हो गयी सपना/
सूख गये/ अंकुर खुशियों के/ मुश्किल हुआ पनपना/
ऐसी आँधी चली/ कि बूढ़ा बरगद/ उखड़ गया
नीड़ अचानक/ मन की गौरैया का/ उजड़ गया/ मिला न/
प्रेम नगर में कोई/ जिसे कहें/ हम अपना।''

(पहने हुए धूप के चेहरे)

यहाँ बूढ़ा बरगद कौन है?मन की गौरैया कहाँ चली गयी?प्रेमनगर के अपने ढूँढ़े भी नहीं मिल रही हैं?आखिर क्यों?इसका उत्तर और समाधान कवि समाज पर छोड़ देता है।कवि का दायित्व समस्या को समाज के सम्मुख रखकर उसका निदान करने की प्रेरणा देना है।कवि का सृजन एक दर्पण है, जिसमें समाज अपना विकृत स्वरूप देख सकता है। स्पष्ट है कि वर्तमान राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्थितियों में व्यापक परिवर्तन हो रहा है। यह परिवर्तन पतनोन्मुख है। कवि इसी तथ्य को अभिव्यक्त कर बार–बार संदेश और चेतावनी देती है। अर्थयुग और बाजारावद में स्नेहिल संबंधों की परिभाषा पूरी तरह बदल गयी है।नैतिकता का लोप हो गया है।अनेक पीड़ाएँ झेलता आम आदमी ऐसे घुप्प अँधेरे में पड़ा हुआ है, जहाँ नियंताओं की दृष्टि नहीं जाती।वयोवृद्ध, अशक्त और बीमार होकर घर के कोने में पड़े हैं और लाभ विहीन सेवा रक्त–संबंधी भी नहीं करना चाहते।

अष्ठानाजी समाज में उपेक्षित जन की पीड़ा को अपनी ही पीड़ा समझते हैं और इसी विशेष निम्नांकित रचना उनकी आंतरिक भावना का बोध कराती है–
''अंगारों पर/ चल जिंदगी/ पड़े सभी को/ तपना/
गमलों में/ कलमी नस्लों के/ पौधे हैं उमगे/ छँटछँटाये/
देशी बीजों के/ दिन कहाँ जगे/ हीरामन बैठ पिंजरे में/
सिखी सिखाई/ जपना।''
''निर्धन बने मिसाल/ शीश पर/ मानव मूल्य उठाये/
रिश्तों–नातों की/ नजरों में/ लेकिन गये गिराये/
बुझे नहीं/ नयनों के जल से/ जलते हुए सवाल।''

इन पंक्तियों को पढ़कर बरबस मैथिली शरण गुप्त की पंक्तियों का स्मरण हो जाता है–'हम कौन थे/ क्या हो गये/ और क्या होंगे अभी।' मानव–मूल्यों में कारण और सांस्कृतिक पतन का तो अनवरत क्रम है, नैतिकता का भी प्रश्न अनुत्तरित है।हिरोशिमा और नागासाकी की त्रासदी की छाया तो अभी मिटी नहीं, नये–नये परमाणु–विध्वंस की प्रस्तावना बनने लगी है। इस क्रम में अष्ठानाजी की दृष्टि व्यापक है, जिससे उनकी रचनाओं में प्रश्नों का निरंतर सिलसिला चलता है, जिसका उत्तर भी प्रकारान्तर से उनके सृजन में उपलब्ध है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उचित ही लिखा है–''ज्यों–ज्यों सभ्यता बढ़ती जाएगी, त्यों–त्यों कवियों के लिए कविकर्म कठिन होता जाएगा।'' बढ़ती उम्र के बावजूद अष्ठाना जी हार नहीं मानते। परख के लिए जितनी कठिन परीक्षा होगी, सृजन की काया भी उतनी सुन्दर होगी।
''अक्सर लोग/ बहक जाते हैं/ रंग–रूप के इन्द्रजाल में/
पर बाकी साँसें/ भरते हम आजीवन/ गहरे मलाल में।
समय निकल जाने पर/ लगता हमको/ रोना ही रोना है।''

(पहने हुए धूप के चेहरे)

श्रीमधुकर अष्ठाना अनुभूतियों के उदात्त स्वरूप की तलाश में सर्वदा नयी भाषा, नयी कहन और नये प्रतीक–बिम्ब में रहते हुए भी यथार्थ अनुभूतियाँ विमुख नहीं होते। आम आदमी अपना जीवन सुरक्षित रखने के लिए सामयिक मुसीबतों से बचा ले जाना चाहता है और प्रायः टकराव से बचता दिखाई पड़ता है। किन्तु एक सच्चा रचनाकार कभी हार नहीं स्वीकारता, बल्कि हर मुसीबत को एक अक्सर की तरह मानकर संघर्ष की नूतन ऊर्जा से चुनौती का उत्तर देता है। अष्ठानाजी भी ऐसे ही रचनाकार हैं, जिनकी लेखनी मुसीबतों में और प्रखर तथा मारक रूप ग्रहण कर शब्दों को उदात्तीकरण कर, कला में और अधिक निखार लाती है, सृजन का बहुमुखी विकास हो जाता है।
''अंधेरे कर रहे रोशन/ तमस को/ काटते हैं हम/
गया जब सूर्य/ घर अपने/ उजाला बाँटते हैं
हम भले ही/ दीप माटी के/ बहुत लघु रूप हैं अपना
मगर सीख है हमने/ पहरुआ बन/ रात भर जगना
बनी दिन–रात ववाई/ निरंतन पाटते हैं हम।''

(खाली हाथ कबीर)

अष्ठानाजी की चिंता अपनी जातीय विरासत बचाकर अंधेरे में भटकते लोगों को उजाले में लाने की है।पुनः अपनी सभ्यता, परंपरा, संस्कृति और प्राचीन गौर को जीवन्त करने की तथा स्नेह–सद्भाव से परिपूर्ण समरस समाज की स्थापना में प्रतिरोध के माध्यम से वातावरण निर्माण करना है।

नवनीत में शृंगार रस विशेष महत्वपूर्ण है।प्रायः लोग यह समझते हैं कि नवगीत में केवल साधारण जन की पीड़ा की ही अभिव्यक्ति होती है, किन्तु सत्य नहीं है।नवगीत शृंगार के माध्यम से भी अपनी कहने में पूर्णतया सक्षम है और इस क्रम में श्रीनचिकेता, कुमार रवीन्द्र तथा अनेक अन्य नवगीतकारों के संग्रह भी आ चुके हैं।केवल अंतर इनका है कि छायावाद अथवा छायावादोत्तर काव्य में अधिकांश परकीया शृंगार ही दिखाई देता है और नवगीत में शृंगार स्वाभाविक और स्वकीया का दर्शन होता है। अन्य विधाओं से नवगीत के शृंगार में तथ्य, कथ्य, शिल्प और बिम्ब में अंतर भी देखा जा सकता है। मधुकर अष्ठानाजी का भी शृंगार इसी क्रम में मूल्यांकित किया जाना ही उचित होगा।इनके शृगांर में प्रकृति के साथ ही सहज रूप में शृंगार वर्णन मिलता है। यथा–
''सर्दियों की/ वह गुलाबी रात/ अबतक याद हमको
प्रकृति से/ जब पुरुष की/ पहचान का/ अवसर नया था
थक गया था सूर्य/ जब विश्राम करने/ घर गया था
गुनगुनाती वारुणी/ वह शाम/ अबतक याद हमको।''

प्रेम वही भी स्वकीया, एक निश्छल एवं निर्मल मन ही कर सकता है। बहुत पहले ही घनानंद कह गये हैं–'अति सूधो सनेह को मारग है/ जहँ नेकु सयानप बाँक नहीं।' समसरता और सद्भाव की कामना करनेवाला ही व्यक्ति दूसरों की बहन–बेटी को अपनी ही बहन–बेटी समझ सकता है।इस विषय में मधुकर अष्ठाना के भी नवगीत स्मरणीय हैं। अष्ठानाजी का शृंगार प्रकृति सौंदर्य के अप्रतिम साँचे में ढलकर व्यक्ति होता है, जिनमें अभिव्यक्ति के साथ ही प्रकृति के अनुपम बिम्ब, सहज प्रतीक आदि सरस और सजीव प्रतीत होते हैं।

निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि मधुकर अष्ठाना जी के नवगीतों को जितना भी समझने का प्रयास करें, उनके अर्थ की उतनी ही नूतन पर्तें खुलती जाती हैं।वरिष्ठ नवगीतकार डॉ.महेश्वर तिवारीजी 'पहने हुए धूप के चेहरे' की भूमिका में लिखते हैं–''एक पाठक की दृष्टि से अपनी बात मैंने आपको अदालत में रख दी। आलोचकों की जूरी को ही अंतिम निर्णय देना है।'' यह कहते हुए मुझे तनिक भी संकोच नहीं है कि छायावाद के उत्तरकालीन सर्जना में गीत की लहर जो मंद हुई थी, उसे नवगीत ने कुंद होने से बचा लिया। जब तत्कालीन आलोचकों पर वामपंथियों का घोर प्रभाव था तो गीत का बहिष्कृत और विरूपित करने का विशेष प्रयत्न किया गया और लगभग राजकीय पत्रिकाओं में प्रकाशित नहीं होने दिया गया। अब भी 'तद्भव तथा हंस' जैसी पत्रिकाएँ नवगीत नहीं प्रकाशित की। छायावादोत्तर गीतकार भी मंचों की शोभा बढ़ाने से अधिक आगे नहीं बढ़ सके। लेकिन जब गीत का रूपांतर हुआ और वह सामयिक प्रतिबद्धताओं और चुनौतियों के फलस्वरूप नवगीत बना तो उसने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। वर्तमान में जहाँ नवगीत

राष्ट्रीय फलक पर अधिकार कर चुका है, अपना वर्चस्व स्थापित कर चुका हैं, वहीं छन्दमुक्त कविता मुख्य धारा में छिटक गयी है। श्रीमधुकर अष्ठाना का इस संदर्भ में योगदान विशेष महत्व रखता है। इस क्रम में मैं गोपाल सिंह नेपाली की निम्नांकित पंक्तियाँ देना चाहूँगा–

''ऐ आलोचक विष घोल नहीं/ साहित्य सुनो, बोल नहीं
रँग रूटों से कह दे कोई/ मंदिर में पीटे ढोल नहीं
तूँ गुटबंदी पर मरे यहाँ/ है लिखने में तल्लीन कलम
मेरा धन है स्वाधीन कलम।''

फिलहाल विदेशी विकृत मानसिकता से उपजी मार्क्सवादी साहित्य और आलोचना का दौर अब समाप्त हो चुका है और उसका स्थान नवगीत ले चुका है, जिसमें भारतीय संस्कृति, सभ्यता, परंपरा, संस्कार और दर्शन के साथ ही जातीय गौरव की स्थापना है तथा वह समाज को सही दिशा, समस्याओं का समाधान करने हेतु प्रेरक की भूमिका निभा रहा है। इन परिस्थितियों में जिन नवगीतकारों ने आपका योगदान दिया है अथवा दे रहे हैं, उनमें अपनी विशिष्ट राष्ट्रवादी चिंतन के लिए श्रीमधुकर अष्ठाना की सर्जना नितांत महत्वपूर्ण हो जाती है और वे निरंतर नवगीत को समृद्ध कर रहे हैं।

1. खाली हाथ कबीर, गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद
2. पहने हुए धूप के चेहरे, गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद

कविताएँ

संजय कुमार
जिला शिक्षा पदाधिकारी, भागलपुर
मो.–8544411115

बख़्श दे

क्रंदन करु, नींदन करु
या तेरा बंदन करूँ
तुम ही बताओ अब क्या करूँ
आज मानव मर रहा है
तेरे ही अभिशाप से
आँखें खोल, नजरें दौड़ा
कम पड़ा क्या लाश अभी
गाँव, महल्ले, शहरों में
देश के अस्पतालों में
नदी के इस पार में
नदी के उस पार में
बचे जो हैं तैर रहे
नदी के मझधार में
पर्वत की सीमा को छोड़
सागर के उस पार में
कम पड़े हैं श्मशान
और कम पड़े अब कब्रिस्तान
हालात को अब देख ले
बख़्श दे और रहम कर
मरनेवाले मर रहे हैं
तेरी ही संतान सब
क्रंदन करूँ नींदन करूँ
या तेरा बंदन करूँ

तू ही बता अब क्या करूँ
माना अपराध गंभीर बड़ा
पर सजा क्या तेरी सूक्ष्म बता
संतान जो तेरा हैं अबोध
क्या तुम भी है अबोध भला
माना संतान कपूत हुआ
कब माता हुई कुमाता बता
जो ज्ञान तुम्हीं ने यहीं दिया
वेद, कुरान और बाईबिल में
गीता, गुरुग्रंथ और एंजिल में
निर्गुणों के वाणी और
सगुणों की रवानी में
रक्षक बड़ा है भक्षक से
संहार बड़ा कब रक्षा से
पर तेने लिया हथियार उठा
पट पड़ा लाश धराधाम चहुँ ओर
क्या रोगी और क्या वृद्ध भला
क्या बालक और क्या वयस्क भला
अब हालत यह है आन पड़ी
अब तू ही बता मैं क्या करूँ
क्रंदन करूँ या निंदन करूँ
या तेरा वन्दन करूँ
अब तू ही बता मैं क्या करूँ
अब तू ही बता मैं क्या करूँ?

सँभल जा

गुज़र रही सफ़र यह
विकट इस मुकाम में
अपने भी दूर हुए हैं
थोड़ी–सी जुकाम में
अदृश्य दुश्मन का यह डर
कहर जो ऐसा ढाया है
दूरियाँ ही आज तो
मर्ज़ की दवा हो गई
आज लोग बंद घरों में
दे रहे संदेश ये
आज रहे सलामत तो
देख लेंगे कल शहर
पहरे में रहे आज अगर
तो देखेंगे कल का पहर
जीवन को आगे बढ़ने से
कदमों को रोकना है अभी
दोस्तो! घर में बंद रहना
आज की मजबूरी है
आज भी संभल जा
पछता भी नहीं पाओगे
पत्तों की सूखी ढेर की तरह
तूफान में उड़ जाओगे
जंग नहीं यह तेरी है
नहीं यह जंग मेरी है
मिलकर लड़ोगे जंग यदि यह
जय तुम्हारी भी होगी
और होगी हमारी भी
अपनों के संग जीने को
यह जहर जुदाई का पीना
रहे महफूज़ आज अगर
कल मिलेंगे खिलखिलाकर।

समीक्षा

मन के मनके

सुषमा मुनीन्द्र
जीवन विहार अपार्टमेंट
रीवा रोड, सतना (मप्र.) मो.–8269895950

मनके का संधि विच्छेद मन के। इस कविता संग्रह में मनुष्य के इतने भाव अनुभव व्यक्त हुए हैं कि संग्रह सचमुच मनुष्य के मन का मुक्ताहार बन गया है।

'मन के मनके' में मुझे कई स्तरों पर चौकाया है। अनिता मोहन भाषा की नहीं भौतिक शास्त्र की प्राध्यापक हैं, वैज्ञानिक रह चुकी हैं, फिर भी इनकी भाषा और शब्दों पर अद्‌भुत पकड़ है। यह उनकी पहली पुस्तक है, लेकिन कविताएँ इतनी गंभीर और गूढ़ है कि जान पड़ता है, इन्होंने अच्छी तैयारी करते हुए ''जब हद से गुजर जाता है दर्द/ पिघल जाता है स्याही बनकर/ फैल जाता है कागज पर/ एक नज्म बनकर।'' (जज्बात का मजाक) जैसी प्रतिबद्धता और ''बस एक इल्तिजा है/ मेरे मालिक/ मेरे पाँव के नीचे/ जमीन जरा खुरदुरी रखना/ गुरुर की फिसलन में कहीं रपट न पड़े।'' (इल्तिजा) जैसी विनम्रता के साथ कलम थामी है।

संग्रह में लगभग सौ कविताएँ हैं। भाषा और शब्दों में ताजगी, तरंग, तरलता, तरुणता है कि कविताएँ झरने की तरह बहती, बर्फ की तरह चमकती, लहरों की तरह मचलती, बादल की तरह बरसती, बीज की तरह अंकुआती, धूप की तरह तपती, छाँह की तरह ठंढाती हुई अपनी स्वाभाविक गतिशीलता में अर्थ स्पष्ट करती चलती है। यहाँ सादगी, संजीदगी, स्पष्टता के साथ जीवन, जगत, जमात के अनगिन भाव–अनुभाव मौजूद हैं। प्रकृति पर्यावरण, मनुष्य, स्त्री, युवा मन की छवियाँ इस तरह चित्रित हैं कि पाठक कविताओं से सहज ही जुड़ाव बना लेता है। माता–पिता के बिना हमारा अस्तित्व नहीं है। शायद ही कोई रचनाकार होगा, जिसने माँ पर न लिखा हो। माँ ऐसा अहसास है जिसमें ब्रह्मांड समाया है। माँ और पिता के लिए अनिता मोहन की प्रतिबद्धता इस तरह व्यक्त हुई है–''मेरी माँ आँखें खोल कर सोती थी/ जादू की छड़ी था पास उसके। या कोई दिव्य दृष्टि/ न वो अलादीन, न भगवाना/ वो तो मेरी माँ थी।'' (कविता 'मेरी माँ') और ''ऊँचा घना और मजबूत दरख्त/ छाँव, फल, बसेरा। प्राणवायु का असीमित भंडार/ सूरज की बेरहमी को/ देती मुँहतोड़ जवाब/ उसकी छाँव।''(पिता)। माता पिता के साथ ही लेखिका स्त्रियों के उस संतुलन को रेखांकित करती है, जिसे बनाये हुए वे पितृकुल में अपने वजूद को विभाजित कर दोनों कुलों के स्वाभिमान–अभिमान को कायम रखती हैं। ''बस कुछ देर और/ माँ बाबुल भाई बहन के आशिष/ धर लूँ ललाट पर/ जल्दबाजी में कहीं कुछ छूट न जाए।'' एक मन पितृकुल से अलग नहीं होना चाहता, एक मन को अपनी गृहस्थी का फिक्र है–''पीछे मुड़कर भी देखते रहना/ कहीं पिछला मोड़/ बहुत पीछे तो न छूट गया/ आ रही हूँ मैं भी पीछे–पीछे/ याद है मुझे अपना वादा।'' (वजूद का बँटवारा) स्त्री अपने वजूद को दो कुलों में बाँटती है, पर विसर्जित नहीं करना चाहती। जरूरत पड़ने पर पितृ सत्तात्मक व्यवस्था की साजिश और बंदिश को चुनौती देती है–'प्यार को मेरे सिर्फ बिंदिया न समझ/ चूड़ी न समझ/ बिछिया न समझ/ ये कोई ठप्पा नहीं/ किसी जेल के कैदी का/ जो बने तेरे होने का सबब।'' (प्यार कोई बेड़ी नहीं) चुनौती देने का साहस स्त्री ने लंबे संघर्ष के बाद हासिल किया है–''जो गुजर गया। शायद वह वक्त नहीं था मेरा/टाल दे मेरी बात/ अब ये जुर्रत न किसी लम्हे में है।–(रंग–ए–गुल) स्वयं को स्त्री के दायरे, दबिश, दीनता के बाहर लाने के लिए अपनी क्षमता, योग्यता को विकसित करते हुए स्त्री जान गई है कि समाज का कार्य व्यापार उसके बिना नहीं चल सकता है–''मजबूत है पंख/ भरनी है ऊँची उड़ान। आँखें न तरेर इरादों पर मेरे/ तेरा ही नहीं मेरा भी है आसमान।'' (ओ छोरी)

लेखिका का प्रकृति के प्रति गहरा जुड़ाव है। प्रकृति ने मनुष्य को जो कुछ दिया, इसके लिए वे कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए प्रकृति की हिफाजत करना चाहती हैं–''पशोपेश में हूँ आज। गर होना था यही अंजाम। तो पड़े लगाया ही क्यों?'' (यादों की दरख्त) नदियों की हिफाजत करना चाहती हैं–'माना कि जरा चंचल है नदियाँ। बेसब्र और गुस्ताख भी। लेकिन जीवन है उसमें। वे सहारा हैं पेड़–पौधों और जीव–जन्तुओं की। बुझाती हैं प्यास। हैं एक नायाब तोहफा सृष्टि का। क्षमता है सृजन की उनमें। देती हैं जन्म समंदर को।'' (नौटंकीबाज) समुद्र को नौटंकीबाज जैसी उपमा शायद पहली बार मिली है। लेखिका ने कविताओं में नई उपमा का बड़ी सूझ–बूझ से प्रयोग किया है–''अपनी धुरी पर चक्की चलाता चाँद। पीसता है दिन और रात को। रात दिन।'' (छलिया चाँद) और ''सर्दियों की रात/ और बारिश की व्याकुल बूँदें। बजाती हैं तबला। पीपल की हथेलियों पर।'' (वो बेमुरव्वत) स्वार्थ और लोभ में उलझकर मनुष्य प्रकृति का दोहन कर उसे जिस तरह श्रीहीन करता जा रहा है, उसे भी लेखिका अलहदा अंदाज में प्रस्तुत करती है–''इस तरह गुजर के पेड़/सूखें क्यों है...क्या कभी सूरज इधर नहीं आता?हवा का झोंका। क्या इन्हें सहलाता नहीं?मालिक की नजर–ए–इनायत तो। सब पर बराबर है। लगता है। किसी की नजर अंदाजी से बेहाल हैं।'' (जानलेवा बेरूखी) प्रकृति की ओर लेखिका का अपना एक कल्पना लोक है–''दीवारों पर फूल खिलें। और न कोई शाख हो। समंदर से सूरज उगे। तारों का उपवास हो।'' (काश कभी ऐसा हो)

लेखिका ने स्त्री, प्रकृति की तरह युवा मन के आलोड़न की भी अच्छी परख–पड़ताल की है। युवा मन जो निरर्थकता में सार्थकता ढूँढ लेता है, निरानंद में आनंद की उम्मीद रखता है, कल्पना लोक उसकी उपलब्धि है–''चलो आज कुछ। रूहानी करते हैं। मैं रेत पर अक्स उकेरूँ। तुम लहरों में बहलाओ। चलो आज कुछ यारी करते हैं। न मैं किसी बात पर रूठूँ। न तुम मुझे आजमाओ। चलो आज कुछ बेमानी करते हैं। मैं आसमाँ के तारे गिनूँ। तुम आँधियों में दीप जलाओ।'' (मन चले ख्वाब) संग्रह की कविताओं में व्यक्त हुआ प्रेम लेन–देन से मुक्त ओस–सा पवित्र और नर्म है–''क्यों तलाशते हो वजहें। बस चले आओ। जैसे कोई बच्चा। पड़ोसी के घर। अपनी गेंद उठाने चला आता है।'' कुछ बेवजह भी) लेखिका कुछ बेवजह की तरह अपने बचपन को अपने भीतर बचाये रखना चाहती है–''कभी–कभी लगता है। हम बड़े क्यों हो गये। दरमियाँ हमारे। ये फासले क्यों उग आये। बचपन में एक साथ। बड़े होकर अलग दुनिया।'' (अनकहा वादा) बचपन के बीत जाने के पछतावे, बड़े हो जाने के रंज से हम सभी गुजरते हैं। बड़े होते ही प्रयोजन इस तरह बदलते जाते हैं कि लगता है हमने एक कृत्रिमता अपने आस–पास रच ली है–''साल तो गुजर जाते हैं। बस लम्हात गुजर पाते नहीं। हँस तो लेते हैं ठहाका लगाकर। बस लब मुसकुराते नहीं। सूरज जी भर उगलता है आग। बस रिश्ते गरमाते नहीं।'' भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, उत्तर आधुनिकता के इस दौर में मनुष्य के व्यवहार में जो बनावटीपन और होशियारी आती जा रही है, वह मनुष्य की वास्तविक पहचान को खत्म कर रही है। चारों तरफ की अफरा–तफरी जीवन को बाधित करने लगी है–''मलिन है झेलम। उजड़े पड़े हैं कचनार। परिंदों ने भी कर दिये खाली। चार चिनार के मकान।'' (मेरा

कश्मीर) चारों ओर कश्मीर जैसी जो आकस्मिक अमानवीय वारदातें हो रही हैं, हमारे फौजियों ने जिस शौर्य का परिचय दिया, लेखिका उसका उल्लेख करना जरूरी समझती है–''खोल दूँ मैं भारी जूते। कुछ देर लगने दूँ पैरों को हवा। नासूर का सूखना जरूरी है। और जब सूख जाये रंग देना इन्हें टेसू के फूलों से।'' (फौजी की होली)

संग्रह की कविताएँ छोटी या मध्यम आकार की हैं, लेकिन लेखिका ने निपुणता से सूक्ष्म में सार भर दिया है। 'कीमत' कविता को तो मुकम्मल कथा कहा जा सकता है–'जाने क्या बात थी। उस खरीददार की बोली में। वो भाव बढ़ाता गया। हम बेशकीमती हो गये।'' (कीमत) संग्रह में जाने उर्दू शब्द और आंचलिक बोली कविताओं के अर्थ और संदर्भ को प्रभावशाली बना देती है–''मोहे छोड़ के जाने तक तो। तोके माफी। मोरी पहचान मिटाने को। दूँगी तोहे गारिया।'' (कर्जदार) अनिता मोहन शब्दों का ऐसा करिश्मा रचती हैं कि चाय जैसे प्रचलित पेय पदार्थ को भी संवेदनशील व्यवहार से जोड़ देती है–''अमूमन! सबके साथ की चाय का स्वाद। अलग–अलग होता है। मगर एक बात सबमें कॉमन है। इसकी गर्माहट। चाय की गर्माहट में। रिश्तों को गर्म बनाए रखने का हुनर जो होता है।'' (एक प्याली गरम चाय) लेखिका की यह संवेदनशीलता जड़–चेतन सभी के लिए है–''बेजार को हमदम। तन्हा को यार मिले। उजड़ों का चमन। गुलों का बहार मिले।''(खुदा खैर करे) 'मन के मनके लिए अनिता मोहन को साधुवाद!

मन के मनके–कविता संग्रह, रचनाकार–अनिता मोहन
प्रकाशक – हिन्दी युग्म ब्लू, नोयडा।

कविताएँ →

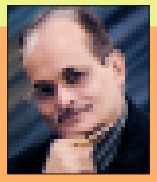

सूर्यप्रकाश मिश्र
बसंत कटरा खोजवा,
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी
मो. 9839888743

बेटी और भैंस

भैंस और बुधुवा की बेटी
दोनों ही बीमार पड़े हैं
सोच रही मड़ई बेचारी
गजब जिंदगी के नखरे हैं
पग–पग पर जीने की कोशिश
जम कर देती इम्तिहान है
बेटी है चिंता भविष्य की
भैंस मगर अब वर्तमान है
पहले किसका साथ निभाये
दोनों रिश्ते साथ खड़े हैं
चूल्हा दोनों जून जल रहा
जीना कुछ आसान हो गया
कटकर ही पर मिला तो सही
कर्ज लगा भगवान हो गया
लेकिन खर्चे के लिहाज से
नियम कर्ज के बहुत कड़े हैं
पहले भैंस दिखायी जाये
बुधुवा ने तय कर डाला है
बेटी का दो चार दिनों तक
बस ईश्वर ही रखवाला है
लोग कह रहे हैं बेटी में

कौन बड़े सुर्खाब जड़े हैं
बुधनी ले आई उधार में
टोले के मुखिया के पैसे
कुछ मेहनत कुछ बेगारी से
चुक जायेंगे जैसे तैसे
ऐसे दिन ही लग जाता है
मुखिया अपने बहुत बड़े हैं

बेटी का सौदागर

चली गई घर से लछमिनिया
दूल्हा कोई दूर देश का
मोल ले गया बिकती कनिया

नन्हकू कुछ भी बोल न पाया
आँसू दर्द सम्हाल ले गया
क्या लेता बेटी की कीमत
जो भी मिला दलाल ले गया

गाय चल पड़ी मजबूरी में
जीने कहीं दूसरी दुनिया

आँसू भरी झुकी आँखों में
घाव दिया जो हरा रहेगा
लेकिन जहाँ गई है बेटी
पेट हमेशा भरा रहेगा

नाम पड़ गया है नन्हकू का
बेटी का सौदागर बनियाँ

बनिये को लत लगी है ऐसी
वही काम हर बार करेगा
बची हुई है चार बेटियाँ
उनका भी व्यापार करेगा

बिक जायेंगी एक–एक कर
सुनरी मुनरी रधिया मुनिया।

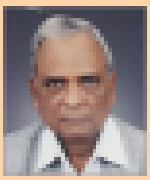

सुनिल कुमार पटेल
मानिकपुर, सूर्यगाढ़, लखीसराय
9431613832

कितना कौन गिनाये

चीन ने फैला दिया है कोरोना का रोग
रूस हो या अमेरिका कोई नहीं निरोग
कोई नहीं निरोग रोग बढ़ता ही जाये
मर रहे हैं लोग कितना कौन गिनाये
कहै 'पटेल' समझाय सुनो हे भारतवासी
रखिये दूरी बनाय न छायेगी उदासी।

2.
करोना है चीन की एक बड़ी साजिश
रहा अछूता न इससे इटली, फ्रांस या ग्रीस
इटली, फ्रांस या ग्रीस लोगों का मरना जारी
है कोरोना कोई रोग या है महामारी
कहे 'पटेल' समझाय भीड़ से दूर ही रहिये
नहीं निकलिये घर से हरदम भीतर रहिये।

3.
दबदबा बनाने को चीने ने किया कुकर्म
अब शायद आता होगा निज कर्मों पर शर्म
निज कर्मों पर शर्म क्योंकि खुद भी भोगा
जीवनभर न उसे पाप से मुक्ति होगा
कहे 'पटेल' समझाय सुन लें मेरा कहना
हाथों को बार–बार साबुन से धोना।

4.
होना चाहिए चीन को खुद पर शर्मसार
थू–थू आज कर रहा है सारा संसार
आज सारा संसार न गिन सकता है लाशें
मुर्दा तो मुर्दा जिन्दा की अटकी साँसें
कहे 'पटेल' समझाय भले हो कोई बिरले
कोई रोड पर ना किसी हाल में निकलें।

आलेख

भागलपुर जेल में रेणु

भारत यायावर
यशवंतनगर, हजारीबाग (झारखंड)
मो. 6204130608

पुलिसिया बर्बरता से दुबले–पतले और कोमल कायावाले रेणु की हालत खराब थी। उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। कमजोरी के कारण शारीरिक गतिविधियाँ शिथिल थीं, उन्हें भागलपुर जेल के सेग्रिगेशन वार्ड में रखा गया था, जिसे बोलचाल की भाषा में 'नया गोल वार्ड' कहते हैं। जेल में वो सभी सुविधाएँ थी, जो बाहर मिलना मुश्किल था। एक डॉक्टर थे, जो बीमार कैदियों को नियमित इलाज करते। उन्होंने रेणु का 'चेक–अप' किया और उचित दवाई तथा खुराक की व्यवस्था की। धीरे–धीरे उनके स्वास्थ्य में सुधार आना शुरू हुआ। अब वे ठीक से चल–फिर पा रहे थे।

उन्होंने एक दिन दूर से ही देखकर सतीनाथ भादुड़ी को पहचान लिया। इसके पहले एक बार वे उनके घर पर गये थे। रेणु को देखते ही वे पहचान गये–'आ–रे! तुमि जे...शाबाश।' दस साल तक की उम्र में छोटे बाबू अर्थात् सतीनाथजी भादुड़ी के जिस स्नेहवत्सल स्वभाव को उन्होंने देखा था, वही अब भी था। वही मीठी हँसी और मिठास भरा स्वर। फिर विस्तार से उन्होंने रेणु के जीवन का विस्तृत वृतांत सुना था। तभी वहाँ अनाथकांत बसु आ गये थे और कुछ देर के लिए भादुड़ीजी वहाँ से चले गये थे।

अनाथकांत बसु पूर्णिया के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता थे। वे रेणु से सरकारी वकील की तरह सवाल पूछ रहे थे–'तुम्हें भागलपुर जेल कैसा लगा?तुम कैसे गिरफ्तार हुए?अच्छा, पुलिस ने तुम पर अत्याचार किया?तभी भादुड़ीजी हाथ में एक प्लेट पकड़े हुए आ गये, जिसमें चार पावरोटी के स्लाइस, मक्खन और अमरुद की जेली थी। उन्होंने अनाथकांत बसु से आग्रह करते हुए बंगला भाषा में कहा–'आ–रे! जरा आराम तो करने दीजिए इसे। यह वही बुद्धिमान लड़का है, जिसने दस साल की उम्र में दारोगा को बुड़बक बनाया था।' उन्होंने प्लेट रेणु की ओर बढ़ाते कहा था–'लो, पहले खा लो। फिर बातें होंगी।' रेणु ने प्लेट लेकर खाना शुरू किया और मन ही मन सोचा कि भादुड़ी अनाथकांत बसु को रेणु का, दारोगा को खानातलाशी लेने के समय बेवकूफ बनाने का प्रसंग, पहले ही बता चुके हैं। इसीलिए उन्होंने अनाथकांत बसु को 'यही लड़का है' कहकर याद दिलाई थी।

1942 के जन आंदोलन में बड़ी संख्या में धर–पकड़ हो रही थी। गिरफ्तार कर तुरंत सजा सुनाकर बंदियों को जेल भेज दिया जाता। रेणु ने लिखा है–''दिनभर में दर्जनों बार जेल का 'लौह कपाट' झनझनाकर खुलता–गिरोह–के–गिरोह घायल, आधे घायल लोग अंदर दाखिल होते। सुबह का आया हुआ आदमी शाम तक पुराना हो जाता। हर गिरोह के साथ ताजा खबर–नये लोग। यह रोज की बात थी, फिर भी लोहे के फाटक के झनझनाते ही जेल के सभी प्राणियों की निगाह उधर मुड़ जाती है। नारे लगते, 'हो हुल्लड़' भी मच जाता कभी–कभी। आगन्तुक दल के घायलों की मरहमपट्टी होती, उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया जाता।'' ऐसे ही एक दिन रामदेनी तिवारी का आगमन हुआ। रेणु ने जब उन्हें देखा तो दौड़ते हुए गए और उनका चरणस्पर्श किया। फिर उनके हाथों को अपने कंधे पर रखकर सहारा दिया और ले आए। उनसे अपने अंचल के अनेक गतिविधियों की जानकारी मिली।

जो भी स्वाधीनता सेनानी जेल में आता, उसके द्वारा बाहर की खबरें आतीं। जेल में अपना पुस्तकालय था, जिससे कोई भी किताब लेकर पढ़ी जा सकती थी। पटने से छपनेवाली दैनिक पत्र भी वहाँ आते थे। राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित घटनाओं से वे परिचित होते रहते थे, किन्तु बाहर से आनेवाले बंदियों के मुख से जो जीवंत समाचार मिलते थे, उसका सुख ही अलग था।

उस समय भागलपुर सेंट्रल बिहार के कई शीर्षस्थ नेता बंद थे। राजेन्द्र प्रसाद को विशेष सुविधाएँ देकर रखा गया था। उनके एक शिष्य थे, जो रेणु के बगल में ही सोते थे। वे राधा सम्प्रदाय के थे। कभी–कभी अपने को नारी की भावदशा में पाते थे और वैसा ही व्यवहार करने लगते थे। एक बार तो उन्होंने ऐसी लीला की, कि रेणु के होश ही उड़ गये।

एक रात रेणु निद्रा में निमग्न थे। अचानक नेताजी के मुँह से अजीब तरह के शब्द निकलने लगे और उनकी नींद टूट गई। उन्होंने सोचा कि जैसे कुछ लोगों की नींद में चलने की बीमारी होती है, वैसे ही इस नेताजी की नींद में बोलने की बीमारी है। लेकिन नेताजी की आँखें खुली थीं और वे लेटे हुए बोल रहे थे...'हे जी! हमार देह से हट जाई।...हमार देह अभी शुद्ध नहिखे। ऐ जी... हटी ना! राउर देह घी–दही के समान बास आवत बा...हटी ना!

रेणु ने देखा कि नेताजी तो उन्हीं को देखकर ये बातें कर रहे हैं। रेणु ने सोचा–मेरी देह से घी–दही की गंध कैसे आ सकती है। कहीं मुझपर चरित्रहीनता का आरोप तो नहीं लगाया जा रहा है?वे छिटककर नेताजी से दूर हो गये। वे भय और जिज्ञासा से भरे हुए थे। वे मन–ही–मन विचार कर रहे थे कि यह कैसा पुरुष है, जो औरतों की तरह व्यवहार कर रहा है।

उधर नेताजी कभी औरतों की तरह देह झाड़ रहे थे, कभी बाँह छिटक रहे थे तो कभी चादर से घूँघट कर लेते थे–बिल्कुल नई बहुरिया की तरह लजा रहे थे। रेणु एक कोने में खड़े रहे, फिर बैठकर रातभर इस अजीब तरह की औरताना हरकतों को देखते रहे।

सवेरा हुआ तो नेताजी चिल्लाने लगे...''जल्दी किसी अच्छे डॉक्टर को बुलाओ।'' जेल का डॉक्टर एक अंग्रेज था। वह उस वार्ड में आया। डॉक्टर ने आते ही उन्हें बिस्तर पर सुलाकर ब्लडप्रेशर चेक किया। थर्मामीटर लगाकर शरीर का तापमान देखा। सब कुछ सामान्य। डॉक्टर अपना बैग बंद करने लगा तो एकदम आगबबूला हो गये–'यह क्या देख रहे हैं?जरा ठीक से.. .अकेले में देखो।'' डॉक्टर को समझ में नहीं आ रहा था कि बीमारी क्या है?इधर रेणु की जिज्ञासा भी बढ़ती जा रही थी कि नेताजी इस तरह एबनॉर्मल क्यों है?तभी उनकी फुसफुसाहट भरी आवाज सुनाई पड़ी। वे डॉक्टर को कह रहे थे–'आई एम सफरिंग फ्रॉम मेन्स ट्रबुल।'

'आँय!' रेणु और डॉक्टर दोनों चौंक पड़े–'ही इज विकम मैड।' बात राजेन्द्र प्रसाद तक पहुँची। नेताजी की पागलपन भरी बातें सुनकर वे दुखी हुए। उन्होंने कहा–'लगता है, यह विक्षिप्त हो गया है।' फिर वे वहाँ से चले गये। फिर नेताजी ने डॉक्टर से ऐसी दवा की माँग की, जिससे मेन्स क्लीयर हो जाए। डॉक्टर ने पागलपन का दौरा समझकर एक छोटी बोतल दे दी। नेताजी ने उस बोतल के ऊपर अंकित कंपाजिशन को गौर से पढ़ा और पढ़ते ही बोतल फेंक दी–'मुझे मेन्स क्लीयर करने की दवा दो, यह क्या दिया है?'

लाचार डॉक्टर को वैसी दवा देनी पड़ी। वे दवा की शीशी को देखते हुए काफी खुश हुए–'हाँ, यही दवा! इसी से ठीक हो जाएगा।'

और दूसरे दिन नेताजी स्वस्थ हो गये। उनका चेहरा फूल की तरह खिला हुआ लग रहा था। जब राजेन्द्र बाबू तक यह बात पहुँचे तो सुनते ही वे चिंतित हो गये–'पता नहीं कितनी यातनाएँ सही है इसने।'

फिर रेणु ने अपने सोने की व्यवस्था अलग कर ली। यह अजीब दृश्य था, जिसे भूल पाना मुश्किल था। वर्षों बाद में उन्हें ज्ञात हुआ कि कुछ लोग ब्रह्म को ही परमपुरुष मानते हैं और जीवात्मा को नारीस्वरूप। रामकृष्ण

परमहंस के जीवन से जब वे अवगत हुए तो उन्हें पहली बार यह पता चला था कि साधना के शिखर पर पहुँचने पर उसके शरीर में नारी के इस तरह के लक्षण उभरे थे।

वे नियमित रूप से तिवारी के पास जाते और उन्हें कोई न कोई साहित्यिक रचना पढ़कर सुनाते। उन्होंने सबसे पहले रवीन्द्रनाथ का 'योगायोग' पढ़कर पूरा सुनाया था। अशक्त तिवारी जी लेटे–लेटे ध्यान से रेणु का कथावाचन सुनते।

रामदेनी तिवारी द्विजदेनी को 'करो या मरो' आंदोलन के दौरान जो मार पड़ी थी, उससे उनको गहरी चोट लगी थी। 1943 ई0 के फरवरी महीने में पूर्णियाँ जेल से उन्हें भागलपुर लाया गया था वे ठीक से उठकर चल भी नहीं पाते थे। रेणु प्रतिदिन जाकर उनकी सेवा करते। अपने पितातुल्य गुरु की उनके अंतिम दिनों में सेवा करने का पुण्य अवसर उन्हें मिला था, यह अपने आप में बड़ी बात थी। एक दिन तिवारीजी ने प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास को सुनाने के लिए कहा। रेणु जेल पुस्तकालय से इस महान उपन्यास को ले आए और रोज एक घंटा तिवारीजी को सुनाते। जब यह उपन्यास पूरा हो गया, तब एक दिन रेणु ने अपने गुरु को बताया कि अज्ञेय नामक लेखक का एक अद्‌भुत भाषा शैली में लिखा, नई शैली का उपन्यास छपा है–''शेखर : एक जीवनी''। तिवारीजी को उन्होंने व्याख्या सहित इस उपन्यास को सुनाया। तिवारीजी की भी इस कृति से बेहद प्रभावित हुए।''

एक दिन उन्होंने रेणु को समझाते हुए कहा–''बेटा! साहित्य की हर विधा में लिखना। ऐसा न हो कि एक ही विधा को पकड़कर रह जाना। तुम कविता लिखने में पारंगत हो। कहानी भी ठीक जमा लेते हो। उपन्यास, नाटक, हास्य–व्यंग्य, संस्मरण–सभी विधाओं में लिखना। आंदोलन और जन–संघर्ष तो तुम्हारे स्वभाव में है, लेकिन लिखना कभी नहीं छोड़ना।''

18 जून, 1943 को जब तिवारी जी दिवंगत हुए, तब उनका सिर रेणु की गोद में ही था। अंतिम समय में वे अपने बेटे को एक चिट्ठी लिखवाना चाहते थे। कलम कागज लेकर रेणु उनके बोलने की प्रतीक्षा कर रहे थे, लेकिन हाथ के इशारे से उन्होंने मना कर दिया और आँखें मूँद लीं। फिर बहुत देर तक निष्प्राण लेटे रहे। कुछ समय बाद रेणु की गोद में ही वे चल बसे। उनका गुजर जाना, मानो पितातुल्य एक ऋषि का उनके ऊपर रखे हाथ का हट जाना था। वे कई दिनों तक रोते रहे थे।

उनके पिता और दोनों छोटे भाई भागलपुर जेल में उनसे मिलने आते रहते थे। उनके पिताजी ने जब सुना कि तिवारीजी नहीं रहे तो वे भी रोते हुए घर लौटे। उनके पिताजी के तिवारजी सिर्फ मित्र ही नहीं थे, सही मार्गदर्शक भी थे। पूरे पूर्णिया जिले में यह खबर सुनकर मातम छा गया। साहित्यिक और राजनीतिक परिवेश के निर्माण में इस महापुरुष की कितनी बड़ी भूमिका थी, सभी इसे वर्षों तक याद करते रहे।

यहीं एक दिन प्रसिद्ध साहित्यकार वीरेन्द्र नारायण से उनकी भेंट हुई, जो बाद में शिवपूजन सहाय के दामाद बने और दिल्ली संगीत नाटक अकादमी के सचिव। वे मूलतः भागलपुर के ही रहनेवाले थे। 1943 के सितम्बर महीने में जब वे भागलपुर सेंट्रल जेल में जिस वार्ड में पहुँचाए गये, वह रेणु का ही वार्ड था। उसके वार्डन को कहा गया–आमदनी! तभी उन्हीं के एक हमउम्र का हाथ उनके कंधे पर आया, वे रेणु थे। उन्होंने मुस्कुरा कर बताया–'यहाँ हर नया आनेवाला आमदनी होता है, ताकि जेल का बही–खाता दुरुस्त रहे।' फिर दोनों में धीरे–धीरे घनिष्ठता होती चली गई। उस समय के रेणु के बारे में वीरेन्द्र नारायण ने लिखा है–

''हमउम्र तो थे ही, हम दोनों की पसंद भी मिलती– जुलती थी। किसान परिवार में जन्म लेने के बावजूद बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ने उसे एक सम्भ्रांत शहरी बना दिया था। गाँवों के कोरेपन के साथ जिस शारीरिक शक्ति का बोध होता है, वह रेणु में एकदम नहीं था। लंबे बाल, भावुक आँखें और छुई–मुई जैसी कोमलता।''

रेणु में किसान की कर्मठता की जगह एक लेखक की कोमलता और मासूमियत थी। भीतर से वे बेहद संवेदनशील थे। उन्होंने कहीं सुना था कि जेल में ही मनुष्य का असली चेहरा देखने को मिलता है। भादुड़ीजी इनसे अलग थे–सहृदय और भावुक एवं समझदार। एक बार उनके बाबूजी ने उन्हें पत्र लिखा था–''तुम्हारे पूर्वजन्म का यह पुण्य है कि तुम्हें भादुड़ी जी जैसे महापुरुष का शुभ सान्निध्य प्राप्त हुआ।'' पिताजी ने मिलने पर कहा था–छोटे बाबू चाय के बारे में बहुत ही मजाकिया बातें बोलते हैं। वे कहते हैं कि फ्लेवर की चाय और होम्यापैथी दवा–दोनों बराबर है। कोई सुगंधित तेल लगाकर होम्योपैथी दवाओं का बक्सा खुला छोड़ दे–सब दवा का 'धक' समाप्त। वैसी ही चाय होती है, किसी किस्म की गंध बर्दाश्त नहीं कर पाती है।

भादुड़ीजी ने ही रेणु को बताया था कि चाय में निकोटिनिक एसिड नहीं होती है, बल्कि ट्योनिक एसिड होती है और सुपाड़ी के एक टुकड़े में जितना ट्योनि एसिड होती है, पाँच पैकेट चायपत्ती के मिलकर उतनी ट्योनिक एसिड नहीं होती।

वहीं दुमका के अशोक बोस भी बंद थे, जिनसे रेणु की अच्छी दोस्ती हो गयी थी। अशोक बोस रेणु की रचनाओं के फैन हो गये थे।

एक दिन मुजफ्फरपुर के रामधारी बाबू ने बंगला से हिन्दी अनुवाद के बारे में भादुड़ी को कहा था–'वो तो बिल्कुल आसान है।' तब भादुड़ीजी जेल–पुस्तकालय से रवीन्द्रनाथ और शरतचन्द्र की कई पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद लाकर रामधारी बाबू को दिखलाया था। 'डाकसा–इटे मेये' का अनुवाद किया गया है–'डाकयाड में रहनेवाली लड़की गोंआर गोविन्द का अनुवाद है–'गोविन्द ग्वाला', टॅइटुम्बर का अनुवाद है–कटहल, मांछ–राँगा का अनुवाद है–रंगीन मछली। कचुरीपाना का अनुवाद है–पानी भरी कचौड़ी। ये सभी क्या अच्छे अनुवाद का नमूना है!

रामधारी बाबू को इन शब्दों के सही अर्थ मालूम नहीं थे। उन्होंने रेणु से पूछा था, तब रेणु ने उन्हें इन शब्दों का सही अर्थ इस प्रकार समझाया था–

डाकसाइटे मेये का अर्थ होता है–बेहद तेज तर्रार लड़की।

गोंआर गोविन्द का अर्थ होता है–ऐसा व्यक्ति जो वज्र मूर्ख हो या अपनी गलती बात पर भी अड़ा हुआ हो।

टॅइटुम्बर का अर्थ होता है–लबालब भरा हुआ।

माँछ रंगा–उस मछली को कहते हैं, जो सिर्फ मछली खाकर रहती है। कचुरीपाना तालाब के पानी के सतह पर फैले हरे और पीले रंग की काई को कहते हैं।

रेणु से सही अर्थ जानकर रामधारी बाबू ने भादुड़ी जी से क्षमा–याचना करते हुए कहा था–वाकई बंगला से हिन्दी अनुवाद करना कठिन है। रेणु ने भादुड़ीजी पर संस्मरण लिखते हुए भागलपुर जेल की बहुत सारी बातें लिखी हैं। एक जगह उन्होंने लिखा है–

''जेल जाने से सब लोग कुछ–न–कुछ लिखना शुरू करते हैं। नियमित कॉपी–पेंसिल (जेल प्रशासन के द्वारा) मिलती थी और मिलता था इफरात समय। हमारा दोस्त वीरेन्द्र नारायण (भागलपुर) नाटक लिखता था और हमेशा अभिनय के साथ सुनाता था। नरेण बाबू हिन्दी में लिखना शुरू किये थे–'समाजवाद की मोटी बातें।' सहरसा के गाँधीवादी रामबहादुर बाबू ने 'गाँधीवादी आहार' शीर्षक पुस्तक लिखी थी। सब कोई कुछ–न–कुछ लिखता था।''

रेणु भी कुछ–न–कुछ लिखते थे। प्रायः कहानियाँ और कविताएँ। भादुड़ीजी एक उपन्यास लिख रहे थे–'जागरी'। जब नाया गोल वार्ड में उन्हें

परेशानी होने लगी, तब उन्होंने अंग्रेज जेल सुपरिटेंडेंट से अनुरोध कर टी–सेल में अपना स्थानांतरण करवा लिया था। इस संदर्भ में रेणु ने लिखा है–

''भादुड़ीजी लिखते थे। लेकिन, क्या लिख रहे थे, पता तब चला, जब हम टी–सेल में गये। पहले इस टी–सेल की तथा वहाँ स्थानांतरण की बातें बता दूँ। जेल के अंदर चार–पाँच सेल थे। नया सेल, ओल्ड सेल, कंडमंड सेल, डी–सेल आदि। उन्नीस सौ तीस–इकतीस के साल में इस टी–सेल को बंगाली टेरेरिस्ट लोगों के लिए तैयार किया गया था। सम्प्रति खाली था। भादुड़ीजी एक दिन जेल सुपरिटेंडेंट से बोले–'साहब! आपके टी–सेल की डिग्री तो खाली है। वहाँ हमें नहीं रख सकते हैं?– अंग्रेज जेल सुपर ने अवाक् होकर भादुड़ीजी की ओर देखा–अपनी इच्छा से इस सेल में रहना चाहता है। यह कैसा प्रिजनर है। बोला–'हम जोर देकर किसी को वहाँ नहीं भेज सकते। लेकिन अपनी इच्छा से जो कोई वहाँ जाना चाहता है, उसकी व्यवस्था वहाँ की जाएगी। किन्तु खुद अपने को क्यों दंड देना चाहते हो, समझ नहीं सका।''

नया गोल के उस बैरक में कोहाहल–कलरव और 'गोल माल' को छोड़कर भादुड़ीजी के साथ निरापद बाबू, अशोक बोस आदि कुछ सात लोग चले गये। कुछ दिनों बाद तीन लोग और चले गये। पढ़ने–लिखने के लिए यह शांत जगह थी। भादुड़ीजी 'जागरी' उपन्यास डायरी–शैली में लिख रहे थें यह उनकी पहली रचना थी। इसके पहले उन्होंने साहित्यिक कृतियाँ तो खूब पढ़ी थीं, लेकिन साहित्यिक लेखन की यह शुरुआत थी। एक दिन रेणु उनसे मिलने टी–सेल में गए। भादुड़ीजी उन्हें फ्लेवर वाली चाय पिलाई। सामने एक कॉपी थी, उसे खोलकर उन्होंने देखा–लेड पेंसिल से काफी कुछ लिखा हुआ था। वे काफी कुछ पढ़ गये। कॉपी बंद कर उन्होंने पूछा–'डायरी लिख रहे हैं?' उन्होंने कहा–'क्यों?किसी की डायरी पढ़ना मना है?और बाकी सब कुछ बिना बोले पढ़ा जा सकता है क्या?'

रेणु लज्जित होकर लौट रहे थे, तब भादुड़ीजी ने कहा था–'चार पन्ने पढ़ ही चुके हो तो बाकी पन्ने भी पढ़ लेना। लेकिन तुम्हारे 'गब्बे हाउस' में उसकी चर्चा या आलोचना नहीं चलेगी।'

उस 'गब्बे हाउस' के विषय में विस्तार से आगे बताया जाएगा। यहाँ भादुड़ीजी के संदर्भ में यह निवेदन कर देना पर्याप्त है कि रेणु ही 'जागरी' के पहले पाठक थे। रेणु ने लिखा है–''उसी टी–सेल में बैठकर 'जागरी' की पांडुलिपि पढ़ना हमेशा के लिए याद रहेगा। बिलु अध्याय–फाँसी सेल पढ़ते–पढ़ते कई बार ऐसा लग रहा था कि कल सुबह ही मेरी फाँसी होगी। अध्याय समाप्त करने के समय लग रहा था–एक भयंकर तूफान चल रहा है।'

बिलु अध्याय का अंतिम अंश इस प्रकार है–यह क्या?बूट की आवाज मेरी तरफ बढ़ती नहीं आ रही है। मेरा वार्डन झाँक कर वार्ड के आंगन की ओर देखता है। अचानक तीन नंबर का गाना बंद हो गया। मेरी सुनने की ताकत भी क्या मानसिक उद्वेग से अचानक लुप्त हो गई?नहीं! गूँगे के बोलने की कोशिश की तरह एक आवाज कानों में आ पहुँची। अति करुण, कातर, असहाय आर्तनाद।
कौन, क्यों?
अब! अब सिर्फ अगणित जूतों की आवाज ही नहीं, गौरीश्वर की चोटी टूटकर गिर रही है–काल वैशाखी का उग्र मतवालापन फिर आर्तनाद–घनघटाछन्न आकाश का हृदय चीरनेवाला आर्तनाद 'होशियारी' से–पाँव के नीचे की धरती चौफाँक हो गयी–नीचे–नीचे अतल अंधकार में।

''सामने बत्ती दिखाओ।' कुछ विकृतांग प्रेत की छाया क्रम–क्रम से छोटी होकर लालटेन की रोशनी में मिल गई। लालटेन सब इस ओर बढ़ती आ रही है–हजार ग्रह–उपग्रह अपनी निर्दिष्ट राह छोड़कर मेरी ओर तेजी से चले आ रहे हैं। प्रत्येक लोग कूप में प्रत्याशित आतंक का सिहरन प्रत्येक स्नायु में 'टायफून' का विक्षोभ–यह हलचल आँखों से फूटकर निकलना चाहती है। तुमुल वात्य विक्षोभ में अब मालूम होता है, खड़ा नहीं रहा जा सकता।''

ऐसी ओजस्वी और प्रभावपूर्ण काव्यात्मक भाषा पढ़कर रेणु का प्रभावित होना स्वाभाविक है। रेणु 'जागरी' का प्रथम अध्याय पढ़ चुके थे। वे दूसरे दिन सतीनाथ भादुड़ी के यहाँ चाय पीने गये तो चाय की चुस्की लेते हुए कहा था–बिलू अध्याय अर्थात् फाँसी सेल पढ़ते–पढ़ते कई बार ऐसा लग रहा था कि कल सुबह मेरी ही फाँसी होगी। आखिरी पंक्तियाँ तो...क्या बोले–माने–माने।'' उस वक्त भादुड़ीजी 'जागरी' उपन्यास के 'औरत कित्ता अर्थात् बिलु की माँ के अध्याय का लेखन–कार्य कर रहे थे। उन्होंने रेणु से कहा–बस, बस और माने समझाने की जरूरत नहीं है। रेणु की आँखें भींग चुकी थीं। वे बोल नहीं पा रहे थे। चार महीने बाद नीलूर अध्याय पढ़कर रेणु ने समाप्त किया। यह अंतिम अध्याय था। पढ़कर उन्होंने भादुड़ीजी के चरण छूते हुए कहा था–''आज आपके मना करने पर भी नही सुनूँगा। अपने पद–रज दीजिए।'' एक दिन उन्होंने कहा–'बिलु भी वर्ल्ड स्टैंड नहीं कर सकता था?'' यानी रेणु स्वयं खून का बहना बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। एक दिन पावरोटी का चाकू से स्लाइश काटते हुए उनकी उंगुली थोड़ी–सी कट गई थी और खून निकल आया था। खून देखते ही वे बेहोश हो गये थे। होश में आने पर उन्होंने कहा था–''उते किछु नय!...आमि ब्लड स्टैंड कोरते पारि ना।''

भादुड़ीजी के बुक–सेल्फ में बंगला एवं अंग्रेजी के कई उपन्यास, बंकिम ग्रंथावली के साथ मानवेन्द्र नाथ की लिखी कई पुस्तकें थीं। व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय जो लोग भादुड़ीजी के साथ हजारीबाग जेल में थे, उन लोगों से सुना था कि भादुड़ीजी भीतर–भीतर से 'रायइस्ट' हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में एम.एन. राय का दल ब्रिटिश सरकार के पक्ष में था। इसलिए एक दिन रेणु ने अपनी अवधारणा को पुष्ट करने के लिए पूछा–'आप अभी तक राय–इस्ट हैं?

'हाँ, हूँ तो हूँ।' बोलकर वे हँस पड़े थे–'एम.एन. राय की कोई पुस्तक पढ़े हो?भारतीय दर्शन पढ़े हो?कोई उपनिषद् भी नहीं। एक ही बार कांट–हीगेल से शुरू किये हो?'

वे जानते थे कि रेणु को सिगरेट पीने की लत है। ब्रांकाइटिश होने के कारण वे छिपकर पीते थे। एक दिन एक व्यक्ति ने भादुड़ीजी से शिकायत की–''उसने फिर से सिगरेट पीना शुरू किया है।'' तब भादुड़ीजी ने कहा था–''छोड़ा था क्या?मैं तो बराबर उसके मुँह में 'अब्दुल्ला सिगरेट' की महक पाता रहा हूँ।..सिगरेट छोड़ देने से शायद उसकी पाटीवाले उसे पार्टी से निकाल न दें, इसी डर से शायद वह सिगरेट नहीं छोड़ पा रहा है। सिगरेट नहीं पीने से गरम राजनीतिक बहस करना थोड़े ही संभव है।''

जेल में कैदियों को तरह–तरह की कारीगरी का प्रशिक्षण दिया जाता था और इनसे काम करवाया जाता था। इसके बदले में जो भुगतान किया जाता था, उसे संड्रीज एलावेन्स कहा जाता था। एक दिन भादुड़ीजी ने कहा था–''देखो, मित्र! देशों के साथ सोवियत संघ के आ जाने से सोवियत साहित्य बहुत सस्ते दर पर मिल जाता है। तुम अपने संड्रीज एलावेंस की रकम को सिगरेट–तंबाकू पर खर्च करते हो, क्यों नहीं इससे पुस्तकें खरीदते। यह अच्छा मौका है।''

रेणु अपने एलाउन्स के पैसे से सिगरेट, सिगार पाइप, तम्बाकू मँगवाया करते थे। इसके बाद यह सब छोड़ दिया और मनचाही किताबें खरीदने लगे। वे पुराने रूसी साहित्य को पहले ही पढ़ चुके थे। नई किताबों में शोलोखोव के उपन्यासों के अंग्रेजी भाषा में छपे अनुवादों ने उन्हें काफी प्रभावित किया। शोलोखोव ने दोन नदी के किनारे बसे गाँवों के जीवन को मानो

अपने प्राणों से सींचा था। 'धीरे बहो दोन' और 'क्वाँरी धरती की अंगड़ाई'–इन दोनों कृतियों को पढ़कर वीरेन्द्र नारायण से रेणु की काफी बातें होती।

इसी भागलपुर सेंट्रल जेल में नेपाल के पहाड़ों पर रहनेवाले दिलबहादुर से उनकी भेंट हुई और धीरे–धीरे आत्मीयता में बदलती चली गई। इसी को पात्र बनाकर उन्होंने 'परती–परिकथा' में अमर कर दिया है, लेकिन सबसे पहले एक शब्दचित्र लिखा। इस शब्दचित्र में वे लिखते हैं–मोटिया, पहाड़िया, किरवा और न जाने किन–किन नामों से लोग उसे पुकारते–वह हमेशा की तरह मुस्कुराकर जवाब देता या टाल देता। एकदम लापरवाह! लेकिन 'भूत' कहने से वह चिढ़कर अगिया बैताल हो जाता था। वह कब बिगड़ता है, गुस्सा होने पर उसकी मुद्रा और मुखाकृति कैसी होती है–यह समझना बड़ा कठिन काम है। प्लास्टर की तरह चिपटा है– कुछ समझ भी आए तो कैसे?इसीलिए कई बार लोगों के 'कपाल' पर उसकी थाली ने दूज के चाँद की तरह दाग जड़ दिये थे। वह अचानक टूट पड़ता था–जंगली बिल्ली की तरह। उछल–उछलकर हमले करता जाता और मुँह से 'फिऊँ–फिऊँ' या 'छिऊँ–छिऊँ' आवाज निकलता। खौफनाक आवाज! उसके तेज नाखून जहरीले थे। मेरे एक मित्र को पाँच महीने तक मरहमपट्टी करवानी पड़ी थी।

रेणु की धीरे–धीरे दिलबहादुर से घनिष्ठता हो गई। घनिष्ठता का मूल कारण था–रेणु का मृदुल स्वभाव और नेपाली भाषा में बातचीत करना। एक दिन दोपहर को जब रेणु लेटे थे, उसने पूछा था–'होय न! यो सुराज भन्ने क्या हो साथी?'

सुबह से लगातार चार घंटे तक 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' के क्लास में बैठे रहने के बाद, दोपहर को जरा–सा आराम करने के समय जब दिलबहादुर ने 'सुराज' का मतलब पूछा तो रेणु का मन अचानक ही चिड़चिड़ा हो गया, लेकिन दिलबहादुर के ओठों पर वही मुस्कुराहट आत्मीयता प्रदान कर रही थी। रेणु ने समझाया–'सुराज का मतलब है–सुंदर राज, अपना राज, जहाँ कोई किसी को न सताए। कोई किसी का गुलाम नहीं। हमारे देश के सुराज में तुमने साथ दिया है, नेपाल के सुराज में मैं साथ दूँगा। क्यों?...तस्यो न भये, फेरि करबो साथी।'

हर दो महीने के बाद रेणु की पुकार 'जेल गेट' पर होती। उनके बाबूजी मिलने के लिए आते। एक बार उन्होंने बताया कि उनके छोटे भाई की शादी उन्होंने कर दी है। दो छोटी बेटियों की शादियाँ भी वे कर चुके हैं। यह सब सुनकर रेणु को बेहद खुशी होती। कभी–कभार उनके बड़े मामा भी उनसे मिलने आते। रेणु के बिना तो उसका भजन–कीर्तन में मन ही नहीं लगता था। इस तरह रेणु को अपने गाँव–इलाके की सभी खबरें मालूम हो जातीं।

रेणु ने एक गप्प गोष्ठी बना रखी थी। इसमें ढेर सारे लोग अपनी बनाई रचना सुनाते। बीच मैदान में एक बेल का पेड़ था। होली के बाद, इसी बेल के नीचे रात में 'गप्प गोष्ठी' जमती। धीरे–धीरे लोग इसे 'गब्बे गोष्ठी' कहने लग गये। रेणु लिखते हैं–

''रात को, भोजनोपरांत हम बेल तले बैठते थे। इसी बैठने–बिठाने के सिलसिले में, सप्ताह में एक दिन 'गब्बे हाउस' का कार्यक्रम भी हो जाता था। गब्बे हाउस के तत्कालीन संचालक, वर्तमान काल में बिहार सरकार के मंत्रियों में से एक हैं। सदस्यों में कई, अपने संचालकों की तरह स्थूलकाय होने के अलावा मोटे–तगड़े कई ग्रंथों के प्रणेता थे। उपनामधारी असाहित्यिक व्यक्तियों की संख्या अधिक थी। मेरे जैसा पिद्दी सदस्य एक और था, जो आजकल दिल्ली में रहता है।''

अध्यक्ष की ओर से रेणु ने यहाँ इशारा किया है, वे कृष्ण वल्लभ सहाय थे और अपने जैसे दुबले–पतले सदस्य का जिक्र किया है, वे उनके परम मित्र वीरेन्द्र नारायण थे। रेणु ने 'अपनी कथा' में आगे लिखा है–'जो भी हो, वैसी अच्छी साहित्यिक बैठकियों का आनंद, बाहर कभी प्राप्त हुआ हो... याद नहीं?न जेल जाने के पहले, न बाद में। 'गब्बे हाउस' में लोग अपनी कथा सुनाते थे। अपनी कथा, आपबीती, आपसुनी...भूत–प्रेत की, आदमी की, जानवर की। संचालक जिसको हुक्म दे दें, बगैर झिझक के शुरू कर देना ही सदस्यता–रक्षा की पहली शर्त थी। नहीं तो जाइए। शतरंज खेलिये या गीत गाइए। फिर कथा चढ़ती कसौटी पर। खरी उतरने पर कथा कहनेवाले खुद–ब–खुद माननीय सदस्यता प्राप्त कर लेता था। ...भूत की कहानी सुनानेवाले कई सदस्य बीच में 'आउट' कर दिये गये। प्रचलित यानी ट्रेडिशनल भूतकथा की कोई कड़ी पकड़ी गई और आउट घोषित हो गये। भूत का खैनी–तंबाकू माँगना, पीछे–पीछे नाम लेकर पुकारना, आदि बातें चालू कथा की श्रेणी में आ जाती थीं और हमारे 'गब्बे हाउस' में चालू कथा नहीं चल सकती थी।''

लेकिन रेणु ने एक बार भूत की कथा सुनाई। बतौर शीर्षक उन्होंने बताया–भूत से हाथ मिलाने की कथा। कहानी बिल्कुल नए आस्वाद की थी। एक अनोखी प्रेम कथा। प्रेमी–प्रशान्त, प्रेमिका–कमली।

जब रेणु की कहानी खत्म हुई। 'गब्बे हाउस' के सदस्यों की बोलती बंद। एकदम सन्नाटा छा गया। संचालक महोदय ने अपने भारी भरकम शरीर को तौलते हुए 'गब्बे हाउस' के सदस्यों से पूछा–'यह कुत्ता अर्धमृतकावस्था में क्यों पड़ा रहा, समझो?' फिर उन्होंने इसकी प्रेत वैज्ञानिक व्याख्या की।

रेणु को इस तरह 'गब्बे हाउस' की माननीय सदस्यता प्राप्त हो गई। यह रेणु की कोरी काल्पनिक कथा थी, जो उनकी अपनी अनुभवसिद्ध 'अपनी कथा' घोषित कर दी गई और उन्होंने कथा को अपने अनोखे ढंग से कहकर प्रमाणित किया–'आप अपनी कथा का नाम राम–श्याम–यदु रखिए या हेरी–डिक–टाम, बुझक्कड़ लोग उसको आपकी ही कहानी बुझेंगे। आपको ही आपकी कथा का पात्र मानेंगे और जिस दिन आप सचमुच अपनी कथा अर्थात् आत्मकथा सुनाने बैठेंगे, बुझक्कड़ों की मंडली त्राहि– त्राहि पुकार उठेगी... अहम की भी सीमा होती है। ...अपने को पंडित नेहरू समझने लगा है... मानसिक चिकित्सागार में भेजो, इसको।''

'अपनी कथा' के आगे रेणु लिखते हैं–''पता नहीं, आप वैसी स्थिति में क्या कीजिएगा। किन्तु मैंने जब अपनी कथा शुरू कर दी है तो अंत तक सुनाकर ही उठूँगा। मानसिक चिकित्सागार में भेजकर मेरी कहानी को बंद कैसे कर सकता है कोई?मेरा अनुमान है, अपनी कथा सुनानेवाला वहाँ भी अपनी कथा सुनाता होगा। वहाँ भी सुननेवाले होंगे, रसिक–सरस–सहृदय श्रोता पाठक!

कथाशास्त्रियों का कथन है–सभी कथा में एक जीवन दर्शन होना आवश्यक है। हर कथाकार का जीवन–दर्शन होना चाहिए, कोई।

अपनी कथा का जीवन–दर्शन, सोदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। अपनी गली की गूँगी बूढ़ी को मैंने अपनी इस कथा की पात्री के रूप में पेश किया है। तो मैं ही वह गूँगी हूँ। उस बूढ़ी को सबसे अधिक सतानेवाला गली का सर्वोच्च शैतान छोकरा सतना भी मैं हूँ। क्लाइमेक्स के आसपास गूँगी बूढ़ी को चिढ़ाने–सताने में मशगूल सतना का प्यारा कुत्ता मोटर के नीचे कुचलकर मर गया, जो वह मैं ही था। वह चीख मेरे ही कंठ से निकली थी। कथा के अंत में सतन रोया, मैं रोया। अपने सबसे बड़े दुश्मन के प्यारे कुत्ते की मौत पर बूढ़ी रोई, मैं ही रोया। बूढ़ी ने सतना की पीठ पर बड़े प्यार से अपनी हथेली रखी, मैंने अपनी पीठ पर अपना ही हाथ रखा।

मतलब यह कि हर कथा को लेखक की आत्मकथा होना चाहिए। वरना, कथा असफल।...मेरे सामने समस्या है, अपनी कथा से अपने को कैसे बहिष्कृत करूँ। कैसे निकाल दूँ 'मैं' को?क्यों निकाल दूँ?असफल कथाकार कौन कहलाना चाहेगा, भला।

'गब्बे गोष्ठी' चल रही थी। एक दिन रेणु ने कटिहार जंक्शन के शरणार्थी कैम्प की एक कहानी लिखी। एक लड़की कितनी मुश्किलों का सामना करती हुई वहाँ तक पहुँची थी। उसपर लगातार बलात्कार हुए। रात में एक वरिष्ठ स्वयंसेवक पहुँचे और उस लड़की के सामने संभोग का प्रस्ताव रखा। वह सिसकने लगी। फिर बोली–'आमाके माफ करेन। बाँधन भेगे गेद्दे।' तात्पर्य यह कि उसकी योनि क्षतिग्रस्त हो गई थी। रेणु की इस कहानी को सच्ची होने का सर्टिफिकेट तो मिल गया, लेकिन अश्लील कहकर। परन्तु वीरेन्द्र नारायण का नाटक खूब जमा था।

भागलपुर जेल से पुस्तकालय में सभी अखबार आते थे। रेणु महात्मा गाँधी की जीवनीपरक सामग्री को गौर से पढ़ते, इसलिए वे उनके जीवन से परिचित होते रहते थे।

महात्मा गाँधी आगा खाँ के पैलेस में 9 अगस्त, 1942 ई.से 6 मई 1944 तक नजरबंद रहे। उनके साथ कस्तूरबा, महादेव देसाई, मीराबेन (जिसका मूल नाम मेडलिन स्लेड था) तथा सरोजिनी नायडू को रखा गया था। सरोजिनी नायडू बहुत बीमार चल रही थी, इसलिए 21 मार्च, 1943 ई.को उनको रिहा कर दिया गया ।

गिरफ्तार होते ही महात्मा गाँधी के सचिव महादेव देसाई का अचानक 15 अगस्त, 1942 को देहांत हो गया। गाँधी ने कहा–'मैं दाहक्रिया में अवश्य उपस्थित रहूँगा, क्योंकि महादेव मेरे लिए पुत्रवत् ही नहीं, उससे भी अधिक था।''

22 फरवरी, 1944 को महाशिवरात्रि के दिन कस्तूरबा का गाँधी की गोद में शाम को देहांत हुआ। बापू सारी रात शव के पास बैठे उन्हें देखते रहे। दूसरे दिन आगा खाँ पैलेस के कैंपस में ही अग्नि संस्कार किया गया। बापू बा की चिता के पास तबतक बैठे रहे, जबतक चिता जलकर राख नहीं हो गयी। महादेव देसाई के बगल में कस्तूरबा की वहीं समाधि बनाई गई।

रेणु ने ये सब बातें अखबारो में पढ़ी थी। बापू बा को गोद में रखकर क्या सोच रहे थे, यह एक रहस्य था। रेणु ने एक मुक्तछंद में लंबी कविता लिखी–आगा खाँ के राजभवन में! इसका कुछ वृतांत उन्होंने 'भादुड़ी' जी पर लिखे संस्मरण में लिखा है। रेणु के शब्द–

जेल में एक बार कवि सम्मेलन में मैंने भी कविता की थी–'आगा खाँ के राजभवन में' थी उसकी पहली पंक्ति। कविता थोड़ी लंबी और मुक्त छंद में थी। कस्तूरबा की मृत्यु के बाद गाँधीजी मन ही मन क्या सोच रहे हैं–मौन होकर कविता में इसका काल्पनिक रूपक अंकित किया था। अनाड़ी हाथों से वयस्क जैसी लिखी हुई कविता के एक स्थल पर गाँधीजी की प्रथम उद्दाम प्रेम के आवेग के मुहूर्त को याद करते हैं–'प्रथम उस चुम्बन का आस्वाद।'

गाँधीवादी वृद्ध श्रोताओं ने आपत्ति की थी–अश्लील और अशोभन बताकर। मुझे बैठ जाना पड़ा था। उदास मन के साथ सेल में लौटकर अपनी डिग्री में बैठा था कि अचानक भादुड़ीजी मेरी डिग्री में आकर मुस्कुराते हुए कहा था–'सुना कि आज तुम्हारा कवि–सम्मेलन खूब जमा?कोई... सुनि तोमार कविता।' कविता की लंबाई देखते ही उनके मुँह से निकला था–'एइ रे...!' उसके बाद मुक्त छंद में लिखा हुआ सुनकर मुझसे पूछा था–'तुम्हारे गाँव में, माने मैथिली में एक कहावत है न, एक तो बंगाली..?'

मैंने हँसकर कहावत पूरी की थी–एक तो बंगाली, दोसर तोतराहा।' वे बोले–तुम्हारी कविता के साथ भी वही हुआ है। एक तो लंबी, दूसरी अतुकान्त। पूरी कविता सुनकर बोले थे–'वे लोग क्या बोले, गाँधीजी ने कभी कस्तूरबा का चुम्बन नही किया?'

उनके सवाल पर मैं हँस पड़ा। थोड़ी ही देर के बाद उन्होंने कहा–''तुम गद्य माने गल्प, कथा–कहानी आदि क्यों नहीं लिखते?कहानी तो देखता हूँ, अच्छा जमा सकते हो।...और...हिन्दी कविता के बारे में मैं कुछ नहीं जानता, लेकिन बंगला में जितना मुक्त छंद लिखा गया, उसमें तुम नहीं रहने पर भी ताल अवश्य है। तुमने स्कूल में प्राइज डिस्ट्रीब्यूशन के दिन बंगला आवृत्ति सुनी होगी। ...'मेघनाद वध' पढ़े हो?आवृत्ति कर सकते हो–किसेर कारणे, कौन लोभे, कॅहे राजा, एसेछो से देशे, राघव।' (माइकल मधुसूदन दत्त की यह पहली मुक्त छंद में लिखी कृति थी। इस पंक्ति का अर्थ है–कहो राजा राघव! किस कारण या लोभ से इस देश में आए हो?') लेकिन महत्वपूर्ण बात यह थी कि रेणु ने ऐसी अद्भुत कविता लिखी थी, जो गाँधीवादी अन्य कविताओं से हटकर थी। उनका दृष्टिकोण ही अलग था।

इस कवितापाठ के बाद रेणु की तबियत और खराब होने लगी थी। वीरेन्द्र नारायण ने लिखा है–''हमलोगों की समस्या थी अच्छी चाय की। जो दूध मिलता था, उससे अच्छी चाय बन नहीं सकती थी। इसलिए जेल के साथी डॉक्टर बोस की सहायता से एक योजना बनाई गई। फिर इसमें वी.पी. सिन्हा भी शामिल हो गये। जेल के डॉक्टर जब जाए तो रेणु ने शिकायत की कि उसे रात के आठ बजे हल्का ज्वर आ जाता है। कभी खाँसता है, तो पसलियों में दर्द भी होता है और तबियत बुझी–बुझी–सी रहती है। रात मे आठ बजे का समय इसलिए तय किया गया था कि उस समय तक वार्ड बंद हो जाता था और कैदी का बुखार देखा नहीं जा सकता था।

डॉक्टरों ने रेणु के लिए अस्पताल का आधा सेर दूध, दो अंडे और दो संतरे की व्यवस्था की। हमलोगों का काम बन गया। अस्पताल के अच्छे दूध से चाय बनती थी। फल और अंडे रेणु के हिस्से पड़ते थे। हमलोगों पर यह जिम्मेदारी थी कि जब भी जेल का कोई अधिकारी दिखे तो समय रहते रेणु को आगाह कर दिया जाए, ताकि रेणु की बीमारी का अभिनय चलता रहे। हमारी चाय और रेणु के फल और अंडे चालू रहे।

आगे वीरेन्द्रनारायण बताते हैं–हमारे वार्ड का वातावरण मजेदार था। रेणु दिन भर किताबें पढ़ते, गप्प लड़ाते या पड़े रहते। बीमारी का नाटक निभाना था। शाम को हमलोग वॉलीबॉल खेलते और रेणु कुर्सी लेकर बनते रेफरी। फिर खाना खाने के बाद वार्ड बंद हो जाता। एक तरफ चार–पाँच व्यक्ति शतरंज की बिसात बिछाते। कुछ ध्यान–पूजा करने लग जाते। कुछ लोग पढ़ते या चिट्ठियाँ लिखते। अधिकतर गप्प करते। एक कोने में भादुड़ीजी लिखते रहते।

सहसा शोर मचता–नाती, घोड़ा जा रहा है या वजीर नहीं बचेगा। रेणु और सिन्हा साहब खीझकर कहते–जाओ भाई! वरना लिखना–पढ़ना बंद हो जाएगा। मेरे मामा के साथी थे, वही शोर मचाया करते थे। फिर मैं जाकर जम जाता। कभी–कभी झगड़ा होता। बिसात उलट दी जाती। एक–दो दिन शतरंज का खेल बंद रहता और रेणु कहते–तुमलोगों के खेल पर एक कहानी लिखूँगा, प्रेमचंद के शतरंज के खिलाड़ी की तरह नहीं।

एक मेडिकल बोर्ड भागलपुर सेंट्रल जेल आया। उसने रेणु की चेकअप कर रिपोर्ट दी। डॉक्टर बोस ने बताया कि रेणु को टी.बी. हो गया है। फेफड़ों में छोटे–छोटे दो सुराख हैं और इलाज के लिए पटना मेडिकल कॉलेज भेजा जा रहा है। यह खबर सुनकर सभी अवाक् रह गये।

अनजाने में ही सही, रेणु को सभी ने बंधन में रखा था, यह अच्छा था। लेकिन बिना इलाज के यह बीमारी ठीक होनेवाली नहीं थी। भागलपुर सेंट्रल जेल में बिताए रेणु का लंबा समय यादगार था। अनेक लोगों के परिचय के साथ ही लेखन का सिलसिला चल पड़ा था, जो उसके जीवन को सार्थक बना रहा था।

आलेख

रामकथा : कुछ रचने की सार्थकता

डॉ0 वेदप्रताप अमिताभ
डी–131 रमेश विहार
अलीगढ़, मो. 9837004113

(संदर्भ डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठककृत : 'सीता' एक विषाद गाथा)

अनेक वैदिक और पौराणिक आख्यान वर्तमान युग के रचनाकारों को सार्थक और प्रासंगिक लगते रहे हैं। उमाशंकर जोशी की यह मान्यता अकारथ नहीं है कि समूचा भारतीय साहित्य 'रामायण' और 'महाभारत' का विशेष ऋणी है। पुनर्जागरण की दौर में हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला आदि हिन्दी कवि वर्तमान समस्याओं और चुनौतियों के संदर्भ में राम, कृष्ण आदि से सम्बद्ध मिथकों और पुराख्यानों की अपने 'विजन' के अनुरूप व्याख्यायित एवं विश्लेषित करते दिखाई देते हैं। स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में भी मूल्यों के तीव्र संक्रमण के बीच युगबोध और मूल्यबोध को रेखांकित करने के लिए अनेक, पौराणिक संदर्भों और चरित्रों की सहायता ली गयी। नयी कविता के विकास और उत्कर्षकाल में 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', 'संशय की एक रात', 'एक कंठ विषपायी', 'आत्मजयी' आदि चर्चित रचनाएँ पुराख्यान–केन्द्रित है। रोलां बार्थ जैसे चिंतक मिथक–पुराख्यान को भाषा का एक रूप विशेष मानते हैं, जिसके द्वारा दुनिया की तमाम चीजों को 'बुर्जुआ श्रेणी' के पक्ष में खड़ा कर दिया जाता है। जबकि कुछ विद्वान मानते हैं कि इससे यथार्थ को 'कालबद्ध आयामों में एक सार्वभौमिक रूप (डॉ. शंभुनाथ) प्रदान करने की सहायता मिलती है। समकालीन कवियों ने संभवतः इसी नजरिए से 'आत्मदान' (बलदेव वंशी), 'अहल्या' (प्रभा खेतान), 'अब किसे बनवास दोगे' (शैलेश जोशी), 'शास्ता सुनो' (सकलदेव शर्मा), 'राम की जलसमाधि' (भारत भूषण), 'सम्पाति चिंता' (मलखान सिंह सिसौदिया), 'पहला कौन्तेय' (अश्वघोष), 'सीता की समाधि' (नगेन्द्र प्रसाद द्विवेदी) आदि कृतियों में पुराख्यान को युगीन चिंताओं और नूतन अर्थ–व्यंजनाओं से समृद्ध किया है। डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक कृत 'सीता : एक विषाद गाथा' भी इसी श्रेणी की आधुनिकता से सम्पृक्त उल्लेखनीय काव्य–रचना है। यह लघु प्रबंध काव्य दो खंडों में सुनियोजित है–सीता स्वयंवर एक प्रश्नचिह्न' और 'सीता–निर्वासन'।

डॉ. नरसिंह श्रीवास्तव ने जिज्ञासा की है कि 'कौन–सा सृजनात्मक लक्ष्य अथवा सरोकार प्रत्येक युग के रचनाकारों को मिथकों के आधार पर नए सृजन की प्रेरणा देता रहा है। क्या यह वर्तमान को भूत से जोड़ने की प्रक्रिया मात्र है अथवा इनके द्वारा कुछ नवीन अनुभूतियों एवं अर्थों को उद्घाटित करने की चिंता है?'सीता स्वयंवर एक प्रश्नचिह्न' में दूसरा विकल्प मुखर है और रचनाकार की प्रश्नाकुलता सीता और राम के ब्याज से कुछ नया कहने पर और रचने के लिए कृत संकल्प है। डॉ. पाठक, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शिष्य रहे हैं और वे जानते हैं कि 'परंपरा', 'अतीतजीविता' का पर्याय नहीं है। आचार्य द्विवेदी निर्भान्त हैं कि 'परंपरा से हमें समूचा अतीत नहीं प्राप्त होता। उसका निरंतर निखरता–छँटता बदलता रूप प्राप्त होता है। यही कारण है कि कई प्रबुद्ध चिंतक और सजग सर्जक परम्परा के प्रति समालोचनात्मक दृष्टिकोण रखते हैं और अनेक अवधारणाओं, प्रथाओं, परिपाटियों को विवेक की कसौटी पर कसकर अंगीकार या तिरस्कार करते हैं। डॉ. पाठक द्वारा इस कृति में स्वयंवर के माध्यम से नारी की स्वतंत्रता पर शर्त की गुंजलक पर प्रश्नचिह्न इसी विवेक–दृष्टि का द्योतक है। 'सीता स्वयंवर' एक प्रश्नचिह्न में 'स्वयंवर' की सामंती प्रथा पर सीता को मथनेवाला तीक्ष्ण प्रश्न बहुत बेधक है। हिन्दी रामकाव्य परंपरा में सशर्त स्वयंवर को लेकर इस प्रकार की वेदना और कैफियत तलब करने की प्रश्नाकुलता कम मुखर हुई है। सीता ने जानना चाहा है कि 'स्वयंवर' तो स्त्री को वरण की स्वतंत्रता थी, लेकिन जनक ने उसके साथ धनुष भंग की शर्त जोड़कर क्या उस स्वातंत्र्य का हनन नहीं किया था–

''शर्त बद्ध स्वयंवर की परंपरा यह
क्या हो सकती है कभी स्वयंवर?''

इस खंड के चतुर्थ अंश में विवाहोपरांत राम से सीता ने ससंकोच पूछा कि अगर किसी अन्य व्यक्ति या दानव ने धनुष तोड़ दिया होता तो क्या होता?स्वयंवर में आए कई राजा तो जनक की उम्र के थे। यदि वे धनुष–भंग की शर्त पूरी कर देते तो फिर सीता को अनचाहे उनकी परिणीता बनना पड़ता। यह कैसा स्वयंवर होता–

''थोड़ी देर को मान लें
यदि उतना बल तुममें न होता
तो क्या सीता का मनचाहा हो पाता
थोड़ी देर को मान लें
यदि उतना बल किसी दानव में होता
ग ग ग ग
तो क्या सीता आपको पा जाती?
तो क्या वह सीता का स्वयंवर होता?''

राम के माध्यम से कवि ने माना है कि यह नारी की स्वाधीनता का परिहास ही होता–'बेशक वह तो परिहास था/ नारी स्वाधीनता और उसके स्वयंवर का।'

विवाहोपरांत 'स्वयंवर' को लेकर सीता की वेदना और इस विषय पर राम से उनका संवाद कवि की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की देन है। 'सीता स्वयंवर' को शर्त से जोड़ने का अपने पिता द्वार किया गया अपमान पहला अघटित अपमान मानती है। सीता के अवलोकन–बिन्दु से जनक को इस रूप में देखना विदेह जनक की परंपरागत छवि का स्पष्ट तिरस्कार है। प्रायः रामकाव्य में जनक को पुत्री के हित की चिंता करते उदात्त चरित्र को रूप में अंकित किया गया है। सीता पिता के साथ–साथ परंपरा को भी कठघरे में खड़ी करती है–

''लांछन मैं किसको दूँ?
उस पहले अघटित अपमान के लिए
पिता को
या टूटती असंगत उस परंपरा को?
वीर–पूजा जिसमें चरमादर्शन बन विहित थी।''

राम के माध्यम से कवि का अपना 'विजन' इस कविता में स्पष्टतः उभरा है–'कोई शर्त आ जुड़े/ नहीं रह जाता वह स्वयं है।' इससे तरुणी की स्वतंत्रता का हनन होता है और स्वयंवर के मूल में स्थित भावना आहत होती है। राम मानते हैं कि सीता की आशंका सही है, यदि वे धनुष नहीं तोड़ पाते तो उनका सीता से परिणय नहीं होता।

''काश!शिवधनुष मुझसे न टूटता
अथवा अपने आदरस्पद की
धन्वा मैं तोड़ना न चाहता
तो क्या होता/ तो क्या
हमारा–तुम्हारा
स्वयंवर वह
पिता की
प्रतिज्ञा की चौखट पर
अपना सिर बार–बार न धुनता।''

राम के इस कथन में जहाँ 'परंपरा' की निर्मम समीक्षा है, वहीं सीता के विचारों का समर्थन है। इसे स्त्री की मुक्ति– आकांक्षा को पुरुष के समर्थन के रूप में देखा जा सकता है। राम के इस कथन में यह ध्वनि स्पष्ट है कि अच्छी और स्वस्थ परिपाटियाँ भी व्यक्तिगत अहं के फलस्वरूप विकृत और नकारात्मक हो सकती है। लेकिन राम एक पिता या शासक के दोष को परंपरा–पालन के खाते में डाल देते हैं। वे 'मर्यादा' और 'रूढ़ि' को पर्याय–सा बना देते हैं। सीता उनके कथित 'स्वाधीन उदार विवेक' की प्रशंसा करते हुए भी महसूस करती है–

''हे मर्यादा पुरुषोत्तम
मर्यादा का अर्थ रूढ़ि–पालन नहीं
परंपराओं की विवेकपूर्ण परीक्षा है?''

वह एक और तीखा प्रश्न उछालती है–'ज्ञान क्या परंपराओं का पिष्टपेषण है।' ज्ञानी पिता से उनकी अपेक्षा थी कि एक 'अनर्गल परंपरा' का भंजन या अतिक्रमण करते। राम भी उनके साथ दिखाई देते हैं, इस क्षोभ के साथ कि रूढ़ियुक्ति होना आसान नहीं है। उनकी दृष्टि में–'ज्ञान और कुछ नहीं/ परंपरा का शोधन है/ जड़ता से मुक्ति।' लेकिन जनक अपने ज्ञानी होने का प्रमाण नहीं दे पाए, उनका पुरुष, बेटी के रूप में नारी की स्वतंत्रता का आदर नहीं कर पाया। अतः राम के साथ –साथ कवि इस महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचा है–

''आसान नहीं होती
गतागत से मुक्ति
और उससे भी कठिन होता है
पहचानना अनागत को।''

'सीता एक विषाद गाथा' के दूसरे खंड में भी सीता के तीखे प्रश्न कवि के प्रखर 'विजन' में संश्लिष्ट हैं। अग्निपरीक्षा के बाद बहुत क्षुब्ध होकर उसने पूछा–'कबतक नारी झेलती रहेगी/ पुरुष के अविश्वास और आशंका का दंभ?' कृति का अंतिम अंश सीता के क्षोभ और आक्रोश की वैचारिक ऊर्जा से दीप्त हो विशेषतः पठनीय और विचारणीय बना है। वनवास का दंड पाकर जहाँ सीता ने पूछा है–'क्या यही है आपका रामराज्य?' वहीं से आश्चर्य है कि क्या राम की संवेदना सर्वथा काठ हो गयी थी–

''आपका कोई धर्म, कोई कर्तव्य
आपका कोई न्याय
आपको आपकी आत्मा के कठघरे में
खड़ा नहीं करता?''
आपसे इस अमानवीय कृत्य का उत्तर नहीं माँगता?''

यदि राम, सीता संबंधी अपवाद को लेकर प्रजा–परितोष के नाम पर पत्नी का परित्याग कर सकते हैं, तो क्या सीता उनकी प्रजा नहीं थी?पुरुष स्त्री के आचरण पर उँगली उठा सकता है तो–

''क्या नारी होने के कारण मुझे आपके आचरण पर
प्रश्न पूछने का अधिकार नहीं है?''

इस प्रबंधकृति का समाधान नारी की दृढ़ निर्णयशीलता के साथ हुआ है। सीता स्पष्ट कहती है कि राम यदि आश्रम की ओर कभी आए भी तो वे उनके साथ कभी नहीं जाएँगी।

यह कृति डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक की कारयित्री प्रतिभा की उपलब्धि होने के साथ–साथ रामकाव्य परंपरा में भी कुछ नया जोड़नेवाली रचना है। स्त्री के साथ होनेवाले अन्याय के प्रतिरोध ने भी इसे उल्लेखनीय बनाया है।

कविताएँ →

देवेन्द्र कुमार मिश्रा
भरतनगर, चंदनगाँव, छिन्दवाड़ा
मो.–9425405022

कर जय–जय

रिश्तों को जिन्होंने किया सदा कलुषित
लाक्षागृह वस्त्रहरण से किया सदा दूषित
ऐसे दुष्टों से मोह न कर
कृष्ण सारथी तुम्हें किस बात का डर
धनुष को खींच हे धनंजय
धर्म की कर चहुँ ओर जय–जय
न्याय की स्थापना हेतु
ईश्वर ने बनाया सदा सेतु
कृष्ण ने कंस को मारा था
शिशुपाल को संहारा था
रश्ते तो वे भी पवित्र थे
किन्तु बड़े वे दुश्चरित्र थे
सत्य की स्थापना के लिए
तू भी कर जय–जय
राम का वंश तू भी
रामायण का अंश तू भी
धर्म के लिए अधर्मियों का सीना चीर कर
छोड़ पराजय कर जय–जय।

(2)

एक
दिखने में दो थे
थे वे एक
अब एक कैसे त्यागे एक को
गुस्सा हो शिकवा हो
कोई और हो सामाजिक धार्मिक बात
दो होते तो कह सकते थे
किसी कारण से त्याग दिया होगा
एक ने दूसरे को
जो एक है, एक था
वो कैसे, किससे, किसको त्यागे
जब दो हो जाते हैं एक
तो पूरण होता है प्रेम
राधा का कृष्ण से
मीरा का श्याम से
सीता का राम से
जो रचाई रासलीला
वो था आत्मा का परमात्मा से मिलन
दो का एक हो जाना।
सारे द्वन्द्वखत्म हो जाना
चलो हम भी एक हो जाये
हम तुममें खो जाये
तुम हममें समा जाओ
भेद मिटे भक्त और भगवान का
भेद मिटे तन का मन का और प्रेम का
हमारा बस प्रेम रह जाये
बस एक ही रहे और सारे भेद मिट जाये।

आलेख

हिन्दी साहित्य में स्त्रीरूप की अभिव्यक्ति

डॉ. रश्मि सी. मालगी
शिवगिरी, धारवाड, कर्नाटक
मो.–8217784916

स्त्री सृष्टि की मूल है। पुरुष की जीवन–संगिनी है। वह माँ है, पत्नी है, प्रेयसी है, पुत्री है, देवी भी है और डाकिनी भी। पवित्रता का निराला आदर्श प्रस्तुत करनेवाली सती भी है और कामांध कुटिलता से भरी हुई विषकन्या भी। स्त्री अनेक रूपों में मानव जीवन को चिरकाल से प्रभावित करनेवाली एक अनबूझ पहेली रही है। भारतीय जीवन–पद्धति प्रायः आध्यात्मिक चेतना से अभिभूत रही है। भारतीय दर्शन प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है। उसके अनुसार नारी प्रकृति रूपी है। वह जीवन रथ का चक्र है।

जीवन के रंगमंच पर जिस प्रकार स्त्री–पुरुष की उपस्थिति अनिवार्य है, उसी प्रकार साहित्य में भी अनिवार्य है। उसी प्रकार स्त्री का चरित्र का चित्रण विविध रूपों में होता है। युगीन वातावरण के परिणामस्वरूप स्त्री चित्रण की दृष्टि में पर्याप्त अंतर परिलक्षित है। हिन्दी साहित्यकारों ने पाश्चात्य साहित्य के क्षेत्र में संकल्पना 'फेमिनिज्म' का प्रभाव दिखाई देता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो यह दिखाई देता है। परिणामस्वरूप स्त्री को केंद्र में पाश्चात्य संकल्पना है।

वैदिक काल से स्त्री साहित्य के केन्द्र बिंदु रही है। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो यह दिखाई देता है कि स्त्री किसी न किसी रूप में साहित्यिक धरातल पर केन्द्रित होकर चित्रित रही है। तुलसीदासजी कहते हैं–

''ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।''

मैथिलीशरण गुप्त जी की दृष्टि में स्त्री दीनता की प्रतिमूर्ति है, जिसके आँचल में दूध और आँखों में पानी है।

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यह कहानी
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी।''

प्रसाद युग में आकर पुरुष ने स्त्री को पहचाना। उनकी स्त्री केवल श्रद्धा है, जिसने अपना सर्वस्व, अपने जीवन के सभी अपने संकल्प अश्रुओं से दान कर दिये। वह श्रद्धेय है। उसे जीवन को सुंदर बनाना है।

''क्या कहती हो ठहरो नारी
संकल्प अश्रुजल से अपने
तुम दान कर चुकीं पहले की
जीवन के सोने से अपने,
नारी! तुम केवल श्रद्धा हो
दिनकर के युग तक।''3

दिनकर के युग तक आते आते स्त्री स्वच्छंद, मुक्त, भोगी, अप्सरा बन गई, जिसका बसेरा न जाने कितनों की चाह में हैं, कितनों के आगोश में है।

''अपना है आवास न जाने कितनों की चाहों में
कैसे हम बँधे रहे किसी नर की दो बाहों में।''

स्त्री मुक्त जीवन चाहती है। प्रेम के एक क्षण लिए वह किसी से बँधना नहीं चाहती। वह मातृत्व से घृणा करती है, वह केवल एक प्रेम के कारण गर्भ की कुरूपता नहीं सहन कर सकती।

''किरणमयी यह परी करेगी यह विरूपता धारण
वह भी और नहीं कुछ, केवल एक प्रेम के कारण।''

दिनकर की उर्वशी स्वच्छंद है, जो वर्तमानकालीन स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। काव्यविधा में चित्रित स्त्री की यात्रा उसके वास्तविक जीवन की यात्रा है। स्त्री के व्यक्तित्व में आए हुए परिवर्तन की वास्तविकता साहित्य की अनेक विधाओं–कहानी, कथा, उपन्यास, नाटक आदि में देखने को मिलती है। युगों की यात्रा ने स्त्री को साहित्य और समाज की मुख्य नायिका बना दिया। स्त्री में आये परिवर्तनों से साहित्य अछूता न रह सका।

हिन्दी कहानीकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा रचित 'उसने कहा था' से लेकर आज तक के कई पुरुष कहानीकार स्त्री के विभिन्न रूप तथा उनसे जुड़ी विभिन्न समस्याओं को लेकर अपनी कहानियों में जीवन की असाध्यता, दुर्बलता, पराधीनता को अंकित किया है। नैराश्य, कुसुम, उद्धार, विध्वंस आदि कई कहानियाँ इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। प्रेमचंदयुग में सुदर्शन, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि कहानीकारों ने विधवा, वेश्या आदि के जीवन को अंकित किया। स्त्री का भावुक रूप जयशंकर प्रसाद ने पुरस्कार, ममता, आकाशदीप कहानियों में चित्रित किया है।

जैनेन्द्रकुमार, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय आदि कहानीकारों ने स्त्री की मानसिकता का चित्रण किया है। यशपाल ने पूँजीपति अव्यवस्था पर हो रहे शोषण 'मृत्युंजय' कहानी में चित्रित किया है। रांगेय राघव और अज्ञेय ने क्रमशः हारिति, विपथगा कहानियों के द्वारा विद्रोही स्त्री को आँका है। राजेन्द्र यादव की 'टूटना' , रामकुमार 'भ्रमर' की 'लौ पर हथेली' मणि मधुकर की 'प्रतिपक्ष' कहानियाँ समकालीन पति–पत्नी के संबंधों की दरारों को दर्शाती है। कामकाजी स्त्री की समस्या को देवेन्द्र इस्सार की 'वह एक क्षण', कमलेश की 'तलाश' कहानी में व्यक्त किया है। इन प्रमुख कहानीकारों के अतिरिक्त ऐसे कई कहानीकार हैं, जिन्होंने स्त्री को केन्द्र में रखकर कहानियों का सृजन किया है।

उपन्यास साहित्य फिर वह स्वतंत्रता पूर्व हो या स्वातंत्र्योत्तर, स्त्री का चित्रण उनका अविभाज्य अंग है। उपन्यास का आरंभिक काल सुधारवादी दृष्टिकोण से प्रभावित था। परिणामस्वरूप गलत परंपराओं का सुधार करने पर जोर दिया गया है। बालविवाह, विधवाओं की स्थिति, अनमेल विवाह आदि के प्रति आक्रोश था। आरंभिक उपन्यासों में स्त्री के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण रखकर उपन्यास लिखनेवालों में श्रद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्रीनिवास दास, पंडित बालकृष्णभट्ट, अयोध्या सिंह उपाध्याय, किशोरीलाल गोस्वामी, ब्रजनंदन सहाय व भारतेंदु हरिश्चन्द्र आदि महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने उपन्यासों में सुधारवादी दृष्टिकोण रखते हुए स्त्री शिक्षा को महत्व दिया है। साथ ही विभिन्न गंभीर प्रश्नों को उपन्यास का विषय बनाया। जैसे अनमेल विवाह, विधवा विवाह, दहेजप्रथा आदि। इस दृष्टिकोण से परीक्षागुरु, भाग्यवती, पंडित बालकृष्ण भट्ट कृत 'सौ अजान और एक सुजान', 'अधखिला फूल', 'लवंगी' आदि उपन्यास महत्वपूर्ण है। इस कालखंड में कुछ परंपरावादी लेखक भी थे, जिन्होंने स्त्री शिक्षा का विरोध किया है। शिक्षित नारी के दाम्पत्य जीवन को असफल करार दिया है।

प्रेमचंद युगीन उपन्यास साहित्य स्त्री विषय बदलते दृष्टिकोण के लिए महत्वपूर्ण रहा है। इस कालखंड के उपन्यास साहित्य पर समाज सुधार आंदोलनों का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचंद के लगभग सभी उपन्यासों में स्त्री सशक्तीकरण का रूप उभरा है। प्रेमचंद युगीन उपन्यासकारों में विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', बेचन शर्मा 'उग्र', भगवती प्रसाद वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, सियारामशरण गुप्त, वृंदावनलाल शर्मा, जैनेंद्र कुमार आदि महत्वपूर्ण हैं।

प्रेमचंदोत्तर काल खंड में मार्क्सवाद, मनोविश्लेषण आदि विचारधाराएँ प्राप्त होती हैं, इसका प्रभाव समस्त साहित्य पर देखने को मिलता है। अन्याय–अत्याचार एवं शोषण के विरोध में आवाज उठाने का प्रयास यशपाल, नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त आदि ने किया है। इसी युग में फ्रायड से प्रभावित रचनाकारों ने स्त्री की स्वतंत्र व्यक्तित्व की ललक और उसका बदला हुआ रूप व्यक्त किया है। विवाह के प्रति प्राप्त नया दृष्टिकोण, दाम्पत्य संबंध,

व्यक्तिवाद, नैतिकता की व्याख्या में आया परिवर्तन, स्त्री राजनीति में प्रवेश, रूप में स्वावलंबी ऐसी कई बातों को उपन्यास में व्यक्त कर आधुनिक स्त्री के परिवर्तित रूप को प्रस्तुत किया है।

हिन्दी साहित्य में नाटकों का वास्तविक आरंभ भारतेंदु काल से ही माना गया है। इस युग को आधुनिक नाट्य साहित्य में नवजागरण तथा नव सांस्कृतिक चेतना का युग माना जाता है। इस युग में जन सामान्य में राष्ट्रीय भावना के उदय के साथ–साथ धार्मिक और सामाजिक जागरुकता आयी। जागृति के इस युग में जनचेतना के लिए नाटक यह माध्यम प्रभावी सिद्ध हुआ है। भारतेंदु तथा उसके समकालीन नाटककारों ने जीवन के प्रत्येक पहलुओं को नाटक में चित्रित किया है।

जयशंकर प्रसाद का नारी के प्रति दृष्टिकोण 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' वाला है। इनके ऐतिहासिक नाटकों द्वारा स्त्री भावना का परिचय मिलता है। 'राज्यश्री' की नायिका आदर्श रूप में चित्रित है, जो अपना वैधव्य का जीवन अपने प्रबल मनोबल से, सात्विकता से व्यतीत करती है। प्रसाद ने अपने नाटकों में नारी के कोमल और कठोर दोनों रूपों का चित्रण किया है। 'विशाखा' की चंद्रलेखा ममत्व के साथ निर्भीक है। प्रसादयुगीन नाटकों में स्त्री भारतेंदु युगीन नाटकों की स्त्री जैसे अन्याय–अत्याचारों को मौन रूप में नहीं सहती। वह अपनी स्वतंत्रता, आत्मसम्मान का अधिकार माँगती है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की नायिका अपने आत्मसम्मान के लिए अपने पति से विद्रोह करती है। प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक होने के कारण अनेक नायिकाएँ, राजकुमारी, रानी आदि विशेष रूप में होते हुए एक नारी का कर्तव्य का भी उतनी ही तत्परता से पालन करती है।

'नारी' विचार स्वातंत्र्य की प्रतीक है। 'राजमुकुट' की पन्ना में साहस, सहिष्णुता, वीरता आदि गुण हैं। 'अंगूर की बेटी' में नारी की दयनीय दशा का चित्रण मिलता है। सेठ गोविन्द दास, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि ने स्त्री के विविध रूप को चित्रित किया हैं वह अपने आत्मसम्मान के लिए समाज से संघर्ष करती है, परंपराओं का विद्रोह करती है। अपने ऊपर हुए अत्याचार का प्रतिशोध करती है।

नवचेतना की लहर स्त्री के लिए अस्मिता की भावना लेकर आई। स्त्री अपने अस्तित्व के लिए बाहर के क्षेत्र में सम्मिलित होने लगी। इससे उसका कार्यक्षेत्र की व्याप्ति विस्तृत हुई। घर में गृहिणी और दफ्तरों में कार्यकुशल स्त्री का रूप उभरकर सामने आया। परिणामस्वरूप शारीरिक कष्ट के साथ दोनों स्तरों पर अहंग्रस्त पुरुषी मानसिकता से उत्पन्न समस्याओं का सामना उसे करना पड़ा। स्त्री में अधिकार क्षेत्र के साथ–साथ कर्तव्य क्षेत्र में भी व्यापकता आ गई है। अपना जीवन स्तर, उन्नत करने के लिए नारी अर्थार्जन के क्षेत्र में उतरी है। समाज में आज भी परित्यक्ता स्त्री की समस्या दिखाई देती है। अब स्त्री इस समस्या का सामना करना सीख गई है। जैसे–लाल के 'मादा कैक्टस' की सुजाता। विष्ण प्रभाकर के 'टगर' की रश्मि परित्यक्ता होने का बदला लेने के लिए एक के बाद एक पुरुष को अपने जाल में फँसाकर छोड़ देती है। उसका कहना है–'सोच था पुरुष जाति से बदला लूँ। उसने मुझे एक बार छोड़ा है।'

साहित्य में स्त्री रूप का चित्रण की यात्रा आदर्श भारतीय रूप से होते हुए मुक्त जीवन तक पहुँची है। मुक्त जीवन की परिणति प्रतिरोध की भावना में हुई। अर्थात् सती सावित्री से लेकर उसकी यात्रा जीवन व समाज में आए परिवर्तन का यथार्थ रूप प्रस्तुत करती है। यह एक प्रकार का प्रतिशोध है, जो वह न्यायिक अधिकार पाकर मुक्त हुई है, जो साहित्य से अनछूई न रह सकी।

संदर्भ–
1. रामचरितमानस से उद्धृत, युगबोध और हिन्दी नाटक –डॉ. सरिता वशिष्ठ, पृ. 87
2. वही, पृ. 88, 3. दिनकर–'उर्वशी', पृ. 16, 4. वही, पृ. 17

कविताएँ

गलती से

मोहनदास नैमिषराय

गलती से कोई लेखक
जब किसी साहित्य या संस्कृति अकादमी
का पदाधिकारी बन जाता है
तब उसकी लेखक को घंटों–घंटों
मुलाकाती कमरे में इंतजार करानेवाले प्रमुख
उसी की आगवानी करते हुए
हुजूर–हुजूर करते हुए नहीं थकता है
गलती से कोई मंत्री
लेखक पर मेहरवान हो जाता है
संपादकों से लेकर पत्रकार भी
जरूरी समझने लगते हैं
उसपर कुछ ना कुछ छापना
अचानक वह महत्वपूर्ण हो जाता है
गलती से जब कोई लेखक बीमार हो जाता है
तो हटो–हटो कहनेवाले डॉक्टर भी
आइये हुजूर कहते हुए
तीमारदारी में जुट जाता है उसकी
अस्पताल में तांता लग जाता है
उस बीमार लेखक को
फूलों का गुलदस्ता देनेवालों का
उन आँखों से भी आँसू आने लगते हैं
जिन आँखों का पानी मर चुका कभी का।

आईना

आईना वह नहीं
जो हम सुबह शाम
घंटों–घंटों खड़े होकर
सामने देखते हैं
आईना वह है
जिसमें हमारा रोजनामचा
लिखा जाता है
और किसी एक एफआईआर के रूप में
दर्ज होता है हमारा वर्तमान
भूत और भविष्य भी
कुछ अधखुले अध्याय जीवन के
पूरी तरह से खुलने लगते हैं तब।

पं. गिरिमोहन
गुरु नगर, होशंगाबाद (मप्र)

ग़ज़ल

बुरा भी भला दिखाई देता है
सभी धुँधला दिखाई देता है

मित्र के दिल का एक्स–रे देखा
बैरी पिछला दिखाई देता है

जिसको चोटी का कह रहे थे सभी
भाग निचला दिखाई देता है

राख के ढेर को न चुप समझो
लावा पिघला दिखाई देता है

जो भी इंसान की तरफ बोला
वही पगला दिखाई देता है।

जीवनी साहित्य

दिवंगत हिन्दी सेवी : आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'

डॉ. इन्द्र सेंगर
विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली
मो. : +91–9911190634

आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन का जन्म 16 सितम्बर, 1916 ई. को उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद (अब गाजियाबाद) की हापुड़ तहसील के बाबूगढ़ नामक ग्राम में हुआ था। बाबूगढ़ भारत की चार विशेष घुड़सवार फौजों की छावनियों में से एक रहा है। ये छावनियाँ 'रिमाउण्ड डिपो' कहलाती थीं। इनमें बाबूगढ़ (इण्डिया) के पते से ही पत्राचार होता था।

सुमनजी के पिता श्रीहरिश्चन्द्र सारस्वत बाबूगढ़ की छावनी में सैनिक अश्वशाला के निरीक्षक थे। सरकारी सेवा से जो समय बचता था, उसमें वे पौरोहित्य किया करते थे। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि संस्कृत शिक्षा रहित होते हुए भी वे पौरोहित्य में बड़े–बड़े धुरन्धरों के छक्के छुड़ा देते थे।

सुमन जी के परिवार में उनके बड़े भाई श्री लखीराम शर्मा को छोड़कर और कोई पढ़ा–लिखा नहीं था। आपके सुकुमार जीवन के 5–6 बसन्त माँ की ममतामयी बाँहों में झूलते हुए गुजर गए। फिर एक दिन वह आया कि बगल में बस्ता दबाए हाथ में तख्ती लिए आप ग्राम की पाठशाला में पढ़ने जाने लगे। यह सन् 1924 ई. की बात है।

जिस समय 'साइमन कमीशन' का अंगद–चरण भारत में जम चुका था, उस समय आप पापहारिणी जाह्नवी के किनारे महामहिम दर्शनानन्द सरस्वती की चरण–छाया में पोषित शिक्षा केन्द्र गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रविष्ट हुए। यह सन् 1928 ई. की बात है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने के कारण सन् 1932 ई. में आप सर्वप्रथम महाविद्यालय के छोटे ब्रह्मचारियों की आर्य किशोर सभा के मंत्री बन गए। इतना ही नहीं, उसी वर्ष आपने आर्य किशोर सभा के हस्तलिखित मासिक मुखपत्र 'किशोर मित्र' के 'दीपमालिका अंक' का सम्पादन भी किया था। यह आपकी प्रतिभा का ही चमत्कार था कि इस अंक के कुशल सम्पादन, सौंदर्य एवं सौष्ठव से प्रभावित होकर अनेक विद्वानों ने मुक्तकंठ से इस अंक की प्रशंसा की थी। उक्त अंक की अनेकशः विद्वानों द्वारा सराहना किए जाने का सुपरिणाम यह हुआ कि आपकी साहित्यिक चेतना का उदीयमान सूर्य अपनी तेजस्वी रश्मियों को साहित्य–जगत् में प्रकाशित करता हुआ आलोकित होने लगा और उसी वर्ष बसन्तोत्सव के पावन पर्व पर आपने एक और रत्न हिन्दी–जगत् को दिया था। यह था हस्तलिखित 'सुधांशु' मासिक पत्र, जो अविरत कीर्ति अर्जित करता हुआ कई वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। उस युग में 'सुधांशु' ने हिन्दी–जगत् को अनेक ऐसे विशेषांक प्रस्तुत किए, जिनकी पं. हरिशंकर शर्मा कविरत्न, श्री द्वारिका प्रसाद 'सेवक', श्री ईश्वरदत्त मेधार्थी और पं. नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ आदि विद्वानों एवम् शिरोमणियों ने उन्मुक्त हृदय से प्रशंसा की थी।

उपर्युक्त पत्रों की भांति ही आपने महाविद्यालय के संस्कृत एवं हिन्दी विभागों के बड़े ब्रह्मचारियों की विद्वत्कला परिषद् के मासिक मुखपत्र 'विद्वत् कला' का भी सफल सम्पादन किया था।

सन् 1936 ई. में आपकी गुरुकुलीय शिक्षा पूर्ण हो गयी। उसी समय शीतलप्रसाद 'विद्यार्थी' ने शान्ति प्रेस, सहारनपुर से 'आर्य' नामक एक सामाजिक–क्रान्तिकारी सचित्र साप्ताहिक पत्र निकालने का विचार सुमन जी के समक्ष प्रस्तुत किया। सुमन जी ने उनके अनुरोध पर, उस पत्र का एक वर्ष तक सुचारु रूपेण सम्पादन किया, परन्तु आर्थिक समस्याओं के कारण वह पत्र बन्द हो गया। उसी वर्ष आप 5 फरवरी, 1938 को आयोजित आर्य किशोर सभा के रजत–जयन्ती महोत्सव के स्वागताध्यक्ष मनोनीत किये गये। आपने इस महोत्सव में पूर्ण मनोयोग से कार्य किया। इसी वर्ष हरिद्वार में होनेवाले कुम्भ मेले के अवसर पर आपने 8 अप्रैल, 1938 को एक विराट् हिन्दी कवि सम्मेलन का आयोजन किया था, जिसकी अध्यक्ष श्रीमती होमवती देवी थीं।

मई, सन् 1938 में सुमन जी का विवाह हो गया और वे जीविकोपार्जन की चिन्ता से घिर गए। परिणामतः जनवरी, 1939 में 'आर्य सन्देश' के सम्पादकीय विभाग में आगरा चले गए। यह पत्र आर्थिक कठिनाइयों के कारण केवल दो मास तक ही चल कर बन्द हो गया। फलतः मार्च, 1939 से आप 'आर्य मित्र' में चले गए। उस समय आपका वेतन बारह रुपये मासिक था। अक्तूबर, 1939 ई. में अमेठी राज्य के राजकुमार रणंजय सिंह ने अपने खर्चे पर आपको 'मनस्वी' मासिक का सम्पादन करने के विषय में विचार–विमर्श करने के लिए बुलाया और चालीस रुपये मासिक पर नियुक्ति की सूचना देते हुए 4 नवम्बर, 1939 को इस प्रकार लिखा–"आप यहाँ शीघ्र से शीघ्र चले आइए, क्योंकि 'मनस्वी' के प्रकाशन में बहुत विलम्ब हो रहा है। आपके लिए चालीस रुपये मासिक का प्रबन्ध हो जाएगा।" सुमन जी वहाँ चले तो गए परन्तु वहाँ का वातावरण और क्रियाकलाप उन्हें रास नहीं आए और गर्मियों में राजकुमार के विजगापट्टम की समुद्र–यात्रा पर जाने के बाद उनकी अनुपस्थिति में तार द्वारा अपने त्याग–पत्र की सूचना देकर मण्डी धनोरा (मुरादाबाद) से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'शिक्षा सुधा' में पहुँच गए। दिसम्बर, 1940 में आपने वहाँ से भी त्यागपत्र दे दिया। अक्तूबर, 1941 में आप हिन्दी–भवन, लाहौर में साहित्यिक सहायक होकर चले गए। वहाँ पर आपकी भेंट प्रसिद्ध नाटककार और कवि उदय शंकर भट्ट और हरिश्चरण 'प्रेमी' से हुई, जिनकी प्रेरणा से आप सम्पादन–कार्य के साथ–साथ लेखन–कार्य की ओर भी प्रवृत्त हो गए। उन दिनों हिन्दी की रत्न, भूषण, प्रभाकर आदि परीक्षाओं की सहायक पुस्तकें तैयार करने का श्रेय सुमन जी ने ही प्राप्त किया था।

लाहौर में रहते हुए सुमन जी हिन्दी 'मिलाप' में उसके सम्पादक श्री लेखराज के साथ काम करने लगे। सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में सुमन जी का निवास क्रांतिकारी नेताओं और कार्यकर्ताओं की शरण–स्थली बन गया। उन क्रान्तिकारियों में पत्रकार, अध्यापक, राजनीतिक और छात्र–छात्राएँ शामिल थे। पुलिस को इस बात का सुराग मिल गया और एक दिन वह आया कि पुलिस ने उनके घर को चारों ओर से घेर लिया। तलाशी में आचार्य दीपंकर पुलिस के हाथ लगे। क्योंकि वे विकलांग थे, इसीलिए पुलिस को उन्हें पहचानने में देर नहीं लगी। इसी कारण सुमन जी भी पुलिस की आँखों में खटकने लगे और कुछ दिनों बाद उन्हें भी नजरबन्द कर लिया गया। इस प्रकार जून, 1945 तक स्वतन्त्रता–सेनानी के रूप में सक्रिय भाग लेने के उपरान्त जुलाई, 1945 ई. में आप दिल्ली आकर जम गए।

मार्च, 1956 में आपके जीवन में ऐसा मोड़ आया कि आप 'साहित्य अकादमी' नई दिल्ली की सेवाओं से जुड़ गए। यहाँ पर लगभग 24 वर्ष प्रकाशन एवं कार्यक्रम अधिकारी के पद पर कार्य करने के उपरान्त अक्तूबर, 1979 से आपने दस खण्डों में प्रकाश्य 'दिवंगत हिन्दी–सेवी' नामक आकर–ग्रन्थ के प्रणयन द्वारा हिन्दी के संवर्धन तथा विकास का वास्तविक इतिहास प्रस्तुत करने का जो महत्त्वपूर्ण अभियान प्रारम्भ किया, वह वास्तव में आपकी साहित्यिक साधना की चरम परिणति है। यदि आपने इस योजना की परिकल्पना न की होती, तो अतीत के अन्धकार में विलुप्त होते जा रहे हिन्दी के हजारों लेखकों, मनीषियों, सेवकों और साधकों के बारे में हम अनभिज्ञ ही बने रहते। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के अभी तक दो खण्ड ही प्रकाशित हुए थे कि उन्हें श्वास–रोग ने दबोच लिया और लगभग 10 वर्ष की लम्बी बीमारी के बाद 23 अक्तूबर, 1993 की रात्रि को 8:50 पर वे स्वयं भी दिवंगत हिन्दी–सेवियों की सूची में सम्मिलित हो गए। हिन्दी–साहित्य का एक विशाल जलयान, जो

अनेकशः बहुमूल्य रत्नों से लदा हुआ था, काल के महासागर में जल–समाधि ले गया।

व्यक्तित्व :

सुमन जी को स्वदेशी और खादी से स्वाभाविक प्रेम था, उनमें किसी फसली–नकली की मिलावट नहीं थी। मझोला कद, स्वच्छ–सादा लिबास, छरहरा बदन, सदाबहार पुष्प की भाँति सदैव मुस्कान बिखेरता हुआ चेहरा, और उस पर जटित काला तिल। उन्नत मस्तक, चिन्तनशील आँखें मिलने वाले पर अनायास ही अपना सम्मोहक पाश डाल देती थीं। उस पर भी खादी का कुर्ता, चूड़ीदार पाजामा अथवा धोती, शेरवानीनुमा लम्बा कोट, सिर पर खादी की नुकीली टोपी और पैरों में पम्प–शू। यदा–कदा साहित्यिक अनुष्ठानों में श्वेत खादी के परिधान धारण कर लेते थे। यद्यपि जीवन का काफी सफर वे तय कर चुके थे फिर भी वे थके नहीं थे। वे अदम्य साहस, पौरुष और कर्मण्यता की प्रतिमूर्ति थे। अपनी राह के पत्थर हटाकर चलने का बल उनमें था। वे कायर नहीं बहादुर थे। उनकी निष्ठा, स्फूर्ति, सजीवता, मस्ती एवं फक्कड़पन, औदार्य और वाक्पटुता तथा आत्माभिमान अनुकरणीय हैं। आतिथ्य–सत्कार उनके जीवन का विशिष्ट अंग था। बड़ा और छोटा प्रत्येक साहित्यकार उनका आतिथ्य प्राप्त कर सकता था। प्रत्येक अतिथि के सम्मान की ललक उनके कमरे में सुशोभित कबीर की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत करती हैं–

साईं इतना दीजिये, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।।

ये पंक्तियाँ सुमन जी की संतोष–वृत्ति का प्रमाण हैं। यही कारण है कि सुमन जी का अपना एक आदर्श था, चरित्र था। उनका अहम् किसी द्वेष का कायल नहीं था। वे विनोदप्रिय थे। साहित्यिक परिवेश से हटकर दैनिक एवं व्यावहारिक जीवन में व्यंग्य विनोद, हास परिहास उनकी मस्ती के परिचायक थे। उन्हें कभी क्रोध नहीं आता था, जब कोई सत्य का मर्दन करके उनके अहम् और स्वाभिमान पर चोट पहुँचाने का प्रयास करता था, तो उनका क्रोध तुलसी के परशुराम से कम नहीं होता था। हाँ, दिल के वे एकदम साफ थे। कोई गलती हो जाय, उनसे क्षमा माँग लो(सुमन जी के यहाँ सर्वदा के लिए माफ। उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट करने में उन्हीं की पंक्तियाँ सार्थक सिद्ध होती हैं–"मैं अपने साहित्यिक जीवन में प्रारम्भ से ही अध्ययनशील रहा हूँ। संघर्ष को अपना मूल ध्येय मानता हूँ। वास्तव में निरन्तर संघर्ष करते रहने की भावना तथा अनवरत अध्ययन करते रहने की लालसा ने ही मुझे कर्म–पथ पर बढ़ने की अदम्य प्रेरणा दी। जिन कार्यों को कोई भी न कर सके, ऐसे कार्यों में सहज ही हाथ डालने की मेरी आदत–सी हो गई है। लेखन, अध्ययन, चिन्तन और मनन के दैनिक कार्य से जब जी उकता जाता है तो जन–सेवा की पावन मंदाकिनी में अवगाहन करके मैं अपने में ताजगी लाता हूँ। कबीर का फक्कड़पन, रहीम का स्वाभिमान और तुलसी की परोपकार– परायणता मेरे जीवन के प्रेरणा–स्रोत रहे हैं।"

रचना–संसार–माँ भारती के मंदिर में जिन कृतियों का पावन नैवेद्य लेकर सुमन जी ने अनन्यार्चना की, उनमें मौलिक और सम्पादित दोनों ही प्रकार की कृतियाँ हैं। मौलिक कृतियों की संख्या तीन दर्जन से ऊपर और सम्पादित कृतियों की संख्या पाँच दर्जन से भी अधिक है। उनका रचना–संसार इस प्रकार है–

मौलिक रचनाएँ :

काव्य–मल्लिका (1943), बन्दी के गान (1945), कारा (1946), और अंजलि (2010)।

समीक्षा–हिन्दी साहित्य : नये प्रयोग (1949), साहित्य–सोपान (1950), साहित्य–विवेचन (1952), हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति (1958), साहित्य विवेचन के सिद्धान्त (1958), आधुनिक हिन्दी साहित्य (1960), हिन्दी साहित्य को आर्यसमाज की देन (1970), साठोत्तरी हिन्दी कविता (1971), मेरठ जनपद की साहित्यिक चेतना (1977), शोध और सन्दर्भ (1985), चिन्तन और चर्चा (1986), नई पीढ़ी के कवि, कृतियाँ और कला (दोनों अप्रकाशित)।

इतिहास–हमारा संघर्ष (1946), कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास (1947), आजादी की कहानी (1949), हम स्वाधीन हुए (1987), अगस्त क्रान्ति (1996)।

जीवनी–नेताजी सुभाष (1946), नये भारत के निर्माता (1948), जीवन–ज्योति (1962), अमरदीप (1968), यशस्वी पत्रकार (1986), भारत के कर्णधार (1996)।

संस्मरण–रेखाएँ और संस्मरण (1975), जाने–अनजाने (1989), चमकते जीवन : महकते संस्मरण (1990), मेरे प्रिय : मेरे आराध्य (1993)।

निबन्ध–प्रभाकर निबन्धावली (1948), सुमन–सौरभ (1950), कुछ अपनी : कुछ पराई, प्रारंभिक लेख (दोनों अप्रकाशित)।

संदर्भ ग्रंथ–दिवंगत हिन्दी–सेवी (10 खण्डों में प्रकाश्य)–प्रथम खण्ड (1981), द्वितीय खण्ड (1983)।

बाल–साहित्य–ये भी बोलते हैं (1981), खिलौने वाला (1984), इतना तो सीखो ही (1993)।

सम्पादित एवं संकलित रचनाएँ :

काव्य–लाल किले की ओर (1946), गांधी भजनमाला (1948), हिन्दी के लोकप्रिय कवि : नीरज (1960), हिन्दी के लोकप्रिय कवि : रामावतार त्यागी (1961), हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत (1961), आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत (1962), चीन को चुनौती (1962), सरल काव्य संग्रह (1964), हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत (1965), नारी तेरे रूप अनेक (1966), वन्दना के स्वर (1975)।

भाषा–परिचय–उर्दू और उसका साहित्य (1952), तमिल और उसका साहित्य (1952), तेलुगू और उसका साहित्य (1953), मराठी और उसका साहित्य (1953), मालवी और उसका साहित्य (1953), बंगला और उसका साहित्य (1953), अवधी और उसका साहित्य (1954), भोजपुरी और उसका साहित्य (1954), संस्कृत और उसका साहित्य (1955), गुजराती और उसका साहित्य (1956), प्राकृत और उसका साहित्य (1956)।

कहानी–गल्प–माधुरी (1948), मनोरंजक कहानियाँ (1950), पारिवारिक कहानियाँ (1951)।

एकांकी–नीर–क्षीर (1949), एकांकी संगम (1958)।

निबन्ध–राष्ट्रभाषा हिन्दी (1948), गद्य सरोवर (1951), निबन्ध भारती (1957), सरल गद्य (1962)।

जीवनी–संस्मरण–जैसा हमने देखा (1950), पं. पद्मा सिंह शर्मा (1951), साहित्यिकों के संस्मरण (1952), जीवन–स्मृतियाँ (1952), नेताओं की कहानी : उनकी जुबानी (1952), बापू और हरिजन (1953), भारतीय आत्माएँ (1975)।

अभिनन्दन–ग्रंथ–डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर अभिनन्दन ग्रंथ (1979), निष्काम–साधक (1984), समर्पित यायावर : राजेन्द्र शर्मा (1985)।

स्मृति–ग्रंथ–आत्मशिल्पी कमलेश (1976), अणुव्रती तापस : गोपीनाथ अमन (1988), चाँदकरण शारदा जन्मशती–ग्रंथ (1988)।

स्मारिकाएँ–भारतीय साहित्य : आदान–प्रदान (1970), स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज हिन्दी : प्रगति और प्रयोग (1975), राजभाषा हिन्दी : प्रगति के बढ़ते चरण (1976)।

सम्पादन–सहयोग–प्रेरक साधक (बनारसीदास चतुर्वेदी

अभिनन्दन–ग्रंथ), बाबू वृंदावन दास अभिनन्दन ग्रंथ, स्वामी रामानन्द शास्त्री अभिनन्दन ग्रंथ, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम, मेरठ जनपद : एक सर्वेक्षण, समर्पण और साधना, जानकी देवी बजाज अभिनन्दन ग्रंथ, महाकवि शंकर अभिनन्दन ग्रंथ तथा हीरालाल दीक्षित अभिनन्दन ग्रंथ।

पत्र–पत्रिकाएँ–आलोचना (त्रैमासिक), मनस्वी (मासिक), शिक्षा–सुधा (मासिक), आर्य (साप्ताहिक), आर्य सन्देश तथा आर्यमित्र (साप्ताहिक), हिन्दी–मिलाप (दैनिक) आदि।

भूमिका–लेखन–सुमन जी ने अपनी साहित्यिक यात्रा में अन्य साहित्यकारों द्वारा विभिन्न विधाओं में लिखित लगभग सौ पुस्तकों की भूमिकाएँ लिखी हैं। इनके अतिरिक्त स्वयं लिखित कतिपय पुस्तकों की भूमिकाएँ भी उल्लेखनीय हैं।

उपयुक्त रचनाओं के आधार पर सुमन जी के कृतित्व को निम्नलिखित रूपों में मूल्यांकित किया जा सकता है–

1. राष्ट्रीय संचेतना एवं जीवन की पुकार के कवि :

अपनी काव्य–रचनाओं में सुमन जी ने विरही साधक एवं राष्ट्रीय चेतना के कविरूप में अनुभूतियों का सम्प्रेषण किया है, जिनमें से प्रथम दो और चतुर्थ रचनाएँ मुक्तक और तृतीय रचना इतिवृत्तात्मक खण्डकाव्य हैं। डॉ. विमल कुमार जैन के शब्दों में "यह खण्डकाव्य एक जागृति का काव्य है, जिसका महानतम सन्देश है मातृ–भू पर सर्वस्व लुटा देना। इस प्रकार इसके भाव तो सुन्दर हैं ही, भाषा भी मनोज्ञ एवं परिमार्जित है, जिसमें नैसर्गिक आलंकारिक छटा ने सौष्ठव को और भी परिवर्धित किया है।" आपके काव्य–संग्रह 'अंजलि' की भूमिका में कविवर श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है–"कविता को अपनी जागीर कहकर, बाँध कर रखने का जो आयास हम करते हैं, उसमें शब्दों की क्लिष्टता, कल्पनाओं की दुरूहता और सबसे अधिक हमारे जीवन के हमारे काव्य से दूर से दूर रहने और होते जाने वाले स्वभाव का हम इतना पोषण करते हैं कि हमारी कहन, काव्य का आनन्द देने वाली होने के बजाय कूट प्रश्नों की बुझौवल–सी हो जाती है। क्षेमचन्द्र सुमन ने वह पथ नहीं पकड़ा।"

2. तटस्थ समीक्षक :

सुमन जी ने अपनी साहित्य–विवेचना सम्बन्धी कृतियों द्वारा हिन्दी–साहित्य के इतिहास में भी सर्वदा नूतन क्रान्ति का श्रीगणेश किया। उनका 'साहित्य विवेचन' अकेला ही ग्रंथ हिन्दी में ऐसा है, जिसकी महत्ता शीर्षस्थ विद्वानों ने स्वीकार की है। इस ग्रंथ के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने–"आपने पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों ही दृष्टियों से साहित्य–विवेचन का कार्य कर दिखाया है, पुस्तक की उपादेयता के बारे में तो कोई सन्देह है ही नहीं।" लिखकर अपनी जो आस्था प्रकट की है, उसको डॉ. नगेन्द्र के इस अभिमत से और भी बल मिलता है–"इसमें भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही काव्यशास्त्रों को अपने विश्लेषण का आधार बनाकर साहित्य के नवीन और प्राचीन सभी रूपों का विवेचन किया है। मैं समझता हूँ, गद्य–गीत रेखाचित्र और रिपोर्ताज का विवेचन सबसे पहले इसी ग्रंथ में हुआ है।" डॉ. सत्येन्द्र ने जहाँ इस पुस्तक को सिद्धान्त, उदाहरण और इतिहास की त्रिवेणी कहा है, वहाँ प्रख्यात आलोचक श्री शिवदान सिंह चौहान ने इसकी उपादेयता सिद्ध करते हुए लिखा है–"यह पुस्तक एक साधारण विद्यार्थी और मर्मज्ञ अध्येता दोनों के साहित्यिक ज्ञान की पीठिका बन सकती है।"

3. राजनीतिक इतिहासकार :

सुमन जी एक सच्चे राजनीतिक इतिहासकार थे। इतिहास सम्बन्धी उनकी कृतियाँ इस बात का ज्वलन्त प्रमाण हैं। उनके द्वारा प्रणीत 'हमारा संघर्ष' में सन् 1942 के आंदोलन का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। 'कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास' में कांग्रेस का जन्म, विकास, संघर्ष, अगस्त–आन्दोलन और खून की होली आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है। 'आजादी की कहानी' में सन् 1857 से लेकर 1947 ई. तक की क्रान्तिकारी लड़ाई का इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

4. जीवनी साहित्य के अग्रणी लेखक :

आचार्य सुमन जीवनी–लेखक के रूप में हिन्दी के सर्वाग्रणी साहित्यकार थे, जिन्होंने 'नेताजी सुभाषचन्द्र बोस' नामक जीवनी की प्रथम पुस्तक लिखकर हिन्दी साहित्य को नई दिशा दी। 240 पृष्ठों में प्रकाशित यह कृति उत्कृष्ट शैली में लिखी गई है। इसके साथ ही 32 स्वतन्त्रता सेनानियों की जीवनियों का एक संकलन 'नये भारत के निर्माता' नाम से तैयार करके सुमन जी ने पं. जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, महात्मा गांधी, जयप्रकाश नारायण और सरदार भगतसिंह जैसे राष्ट्रनिर्माताओं की जीवन–गाथा का यथार्थ चित्रण किया है।

5. मधुर संस्मरण लेखक :

'रेखाएँ और संस्मरण' का पारायण करने से ज्ञात होता है कि सुमनजी को अनेक साहित्यकारों, मनीषियों और विद्वानों का सान्निध्य प्राप्त हुआ था, जिनसे सुमन जी ने अपने जीवन में प्रचुर प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया। इतना ही नहीं, सुमन जी ने इस प्रेरणा और प्रभाव को इतनी तन्निष्ठता से आत्मसात किया कि वे स्वयं अपने प्रिय और आराध्यों की श्रेणी में प्रतिष्ठापित हो गये तथा स्वयं भी एक ज्योतिपुरुष बन गए। इस कृति पर प्रकाश डालते हुए इन्दौर से प्रकाशित 'नई दुनिया' (10 अक्तूबर, 1976) ने लिखा था–"सुमन जी ने इस पुस्तक में लगभग 30 साहित्यकारों के संस्मरण दिए हैं। रोचक होने के साथ–साथ यह पुस्तक हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकारों के विषय में सामयिक जानकारियाँ भी प्रदान करती है, जो कि हिन्दी साहित्य के गम्भीर पाठकों और सामान्य विद्यार्थियों दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। सुमन जी साहित्य–यात्रा के जागरूक परिद्रष्टा रहे हैं। वे जानकारियों के जीते जागते भण्डार हैं। यह तथ्य उनकी इस पुस्तक से और उसमें प्रकाशित अनेक महत्त्वपूर्ण पत्रों, दस्तावेजों और तथ्यों से प्रकट होता है।"

6. जागरूक निबन्धकार :

निबन्ध के क्षेत्र में सुमन जी का निबन्धकार एक विशेषज्ञ का जामा पहनकर अपने इर्द–गिर्द सीमाओं का निर्माण नहीं करता, बल्कि मुक्त पक्षी की भाँति उड़ता हुआ कभी इस वृक्ष पर तो कभी उस वृक्ष पर बैठता है और उसका पत्ता–पत्ता छान मारता है। सब तरफ का चक्कर लगाकर वह जहाज के पक्षी की भाँति बार–बार अपने मूल विषय, भाषा और संस्कृति तथा साहित्य पर आ जाता है। जोखिम उठाने से वह कभी भयभीत नहीं होता। यथानुभव लेखन उसका धर्म है। भय और प्रलोभन उसकी तूलिका का स्पर्श तक नहीं कर पाते, अपितु कठिन, दुस्साध्य और असम्भव कार्यों में हाथ डालना उसकी आदत है। यही बात उनकी भाषण शैली में दिखाई पड़ती थी। वे एक कुशल वक्ता थे। श्रोता उनके भाषण बड़े मनोयोग से सुनते थे।

7. हिन्दी साहित्य के क्रान्तिकारी इतिहासकार :

सुमन जी द्वारा लिखी जानेवाली 'दिवंगत हिन्दी–सेवी' ग्रन्थामाला ने सुमन जी को हिन्दी–साहित्य के यशस्वी इतिहासकारों की परम्परा में जोड़ दिया है। इस ग्रन्थ के कारण ही सुमन जी का स्थान विशिष्ट रूप से एक क्रान्तिकारी इतिहासकार के रूप में स्थापित हुआ। ध्यातव्य है कि इस ग्रंथ के लिए पूर्णतः प्रामाणिक एवं उपादेय सामग्री जुटाने के लिए उन्होंने सारे देश की कई बार 70–75 हजार कि.मी. की यात्राएँ की थीं। हिन्दी साहित्येतिहास–लेखन की परम्परा जो क्रमशः गार्सा द तासी से लेकर श्री शिवसिंह सेंगर, डॉ. ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, श्री रामनरेश त्रिपाठी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक आकर रुक गई थी और हिन्दी–जगत् में सर्वत्र आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास का ही पिष्टपेषण हो रहा था। 'दिवंगत हिन्दी–सेवी' ग्रन्थमाला से हिन्दी–साहित्य के इतिहास को नयी दिशा मिली है। हिन्दी साहित्य का इतिहास अब करवट

बदलने लगा है। स्वनामधन्य इतिहासकार जो लकीर के फकीर बनकर हिन्दी–मन्दिर में मठाधीश बने बैठे थे, आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन ने अपने उक्त ग्रन्थ में अनेक नूतन मान्यताओं को उद्घाटित करके उनकी आँखें खोल दीं। आश्चर्य की बात तो यह है कि वर्तमान स्वनामधन्य इतिहासकारों ने उनकी शोधपरक नूतन मान्यताओं का उतने उन्मुक्त हृदय से स्वागत नहीं किया, जितने साहस के साथ उन्हें स्वागत करना चाहिए था। कारण स्पष्ट है कि उन्हें अपने पैरों के नीचे की नकली जमीन ही असली जमीन दिखाई दे रही थी। तथापि हिन्दी–जगत् में इस ग्रन्थ का अप्रत्याशित आदर हुआ। श्री वियोगी हरि 'दिवंगत हिन्दी–सेवी' के प्रथम खण्ड की भूमिका में लिखते हैं–'जिस कार्य को शिवसिंह सेंगर, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि साहित्यकारों ने हाथ में लिया था, वह बीच में कुछ शिथिल–सा हो गया। उस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए देखकर स्वभावतः बड़ा सन्तोष और आनन्द होता है। हिन्दी–जगत् के जाने–माने सुलेखक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने जब दिवंगत हिन्दी–सेवियों के कीर्ति–गान का संकल्प किया, तो हम सबके मन प्रफुल्लित हो गए। संकल्प यह महान् ज्ञान यज्ञ का है। विशुद्धभावना, ऊँचा साहस और अथक परिश्रम इस यज्ञ की पुनीत सामग्री है। अकेले ही सुमन जी ने इस सामग्री को जुटाया। दिवंगत हिन्दी–सेवियों का स्मृति–श्राद्ध करते हुए पुण्य सलिला गंगा में मानो वे अवगाहन कर रहे हों और दूसरों को भी इस पावन पर्व पर पुण्य लूटने का आमंत्रण दे रहे हैं।"

इस सन्दर्भग्रन्थ के प्रकाशन की महत्ता और सुमन जी के अथाह ज्ञान पर प्रकाश डालते हुए डॉ. महावीर अधिकारी ने अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं–"श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' साहित्य के एक जीवन्त सन्दर्भ ग्रन्थ हैं। ऐसे हजारों हिन्दीसेवी हैं, थे और होंगे, जिनके बारे में वे इतना जानते हैं, जितना कि देश के सभी विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक कुल मिलाकर जानते होंगे, लेकिन उनका नाम 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लेखन के समय किसी को याद नहीं आता। बेहतर हो कि शिक्षा–संस्थानों से जुड़े इतिहासकारों के घृणित नामों का, हम स्मरण न करें।"

इस अनूठे कार्य की प्रशंसा करते हुए आलोचक श्री राजनाथ शर्मा लिखते हैं–"जो कार्य काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जैसी प्रसिद्ध संस्थाएँ करने का साहस न जुटा सकीं, उसे सुमन जी ने अकेले केवल अपने बलबूते पर करके दिखा दिया है।" श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना लिखते हैं–"श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने इस पुस्तक में इतिहास के अज्ञात अंधेरों में गायब हो गए हिन्दी के असंख्य रचनाकारों को फिर से जीवित कर दिया है और उनका नाम ऐसे शिला–लेख के रूप में उकेर दिया है, जो लम्बे समय तक अमिट रहेगा।" दिवंगत हिन्दीसेवी के द्वितीय खण्ड का लोकार्पण करते समय 22 जून, सन् 1983 को तत्कालीन राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैल सिंह ने इस ग्रन्थ की महानता एवं उपादेयता इस प्रकार व्यक्त की थी–"मैं समझता हूँ कि सुमन जी ऐसे महापुरुष हैं, जिन्होंने वह काम किया है, जो हमारे देश के शिक्षा मंत्रालय को, हमारे देश की यूनिवर्सिटियों को आज से 25 वर्ष पहले शुरू कर देना चाहिए था।" 'दिवंगत हिन्दीसेवी' में उद्घाटित नूतन तथ्यों के सामने पिष्टपेशित हिन्दी–साहित्य के इतिहास की अनेक मान्यताएँ दम तोड़ती नजर आती हैं। 'दिवंगत हिन्दी–सेवी' के आधार पर कतिपय तथ्यों के प्रमाण प्रस्तुत हैं–

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को खड़ी बोली का प्रथम कवि, गद्य–लेखक और नाटककार लिखा है। परवर्ती साहित्यकार इसी मान्यता का अनुसरण करते रहे। उन्होंने इससे आगे कुछ भी सोचने का कष्ट ही नहीं किया। वास्तविकता यह है कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का खड़ी बोली से दूर का भी रिश्ता नहीं था। भला वे इस आन्दोलन के सूत्रधार कैसे बन सकते थे। परवर्ती साहित्यिक इतिहासकारों ने भी खड़ी बोली के क्षेत्र की काव्य–कृतियों का अन्वेषण करने का कष्ट गवारा नहीं किया और शुक्ल जी की इसी मान्यता को नींव का पत्थर बना दिया। जबकि वास्तविकता यह है कि भारतेन्दु से पूर्व भी सन्त कवि घीसादास (1803–1868) और सन्त कवि गंगादास (1822–1913) ने खड़ी बोली में सशक्त रचनाएँ प्रस्तुत की थीं। गद्य के क्षेत्र में पं. गौरीदत्त (1836–1906) भी अपनी प्रतिभा का प्रभूत परिचय दे चुके थे। लेखक ने अपनी शोध–यात्रा में भारतेन्दु–पूर्व खड़ी बोली के सात कवियों का काव्य उपलब्ध किया है। उससे स्पष्ट जाहिर होता है कि खड़ी बोली कविता का विकास खड़ी बोली क्षेत्र की ही देन है।

2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धाराम फुल्लोरी द्वारा 'भाग्यवती' (1877) उपन्यास को खड़ी बोली का प्रथम उपन्यास स्वीकार किया है। सुमन जी के शोध के अनुसार पं. गौरीदत्त द्वारा लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870) हिन्दी का पहला उपन्यास ठहरता है।

3. रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर के हिन्दी पाठ्यक्रम में निर्धारित हिन्दी साहित्य का इतिहास (डॉ. रामरतन भटनागर) में छायावाद के प्रवर्त्तक कवि मुकुटधर पाण्डेय को सन् 1918 में दिवंगत दिखाया गया, तो किसी भी लेखक ने उसका प्रतिकार नहीं किया। यहाँ तक कि उनके ही शहर में वे जीवित रहते हुए भी मृत पढ़ाए जाते रहे, जबकि उनका निधन 1989 ई. में हुआ।

4. मिश्रबन्धु भी इस प्रकार की भूलें करने में पीछे नहीं रहे हैं। उन्होंने 'मिश्रबन्धु विनोद' के चतुर्थ खण्ड में पृष्ठ 555 पर बिहार के कवि रामवचन द्विवेदी 'अरविन्द' का निधन–काल स्पष्टतः संवत् 1986 दिया है, जबकि उनका निधन सन् 1991 ई. में हुआ था।

5. ऐसा ही अद्भुत चमत्कार रामनरेश त्रिपाठी की 'कविता कौमुदी' नामक पुस्तक के द्वितीय भाग के पृष्ठ 357 पर देखने को मिलता है। इसमें त्रिपाठीजी ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कविताओं के साथ 'अछूत की आह' शीर्षक, जो रचना प्रकाशित की है, वह आचार्य शुक्ल की न होकर, किसी दूसरे रामचन्द्र शुक्ल की है।

6. 'दिवंगत हिन्दी–सेवी' लेखन के लिए की गई यात्रा के फलस्वरूप सुमन जी को 24 ऐसे साहित्यकारों की जानकारी मिली, जो उस समय जीवित थे, परन्तु हिन्दी साहित्य में उन्हें दिवंगत दिखाया जा रहा था। किंबहुना, अब तक लिखे गए 'हिन्दी–साहित्य के इतिहास' अपने उदर में ऐसी ही असंख्य भ्रामक भूलों को पचाए हुए हैं। आचार्य सुमन जी द्वारा लिखित 'दिवंगत हिन्दी–सेवी' आकर ग्रन्थ के प्रणयन से सुधी पाठकों का ध्यान इन भूलों की ओर निश्चय ही केन्द्रित होता है। इन सभी उद्घाटित नूतन मान्यताओं से प्रमाणित होता है कि सुमन जी ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में जिस क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया था, उसी क्रान्तिकारी व्यक्तित्व ने हिन्दी–जगत् में व्याप्त ऐतिहासिक–अराजकता को समाप्त करने के लिए हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की एक नई क्रान्ति का प्रारंभ किया था।

इस क्षेत्र में सुमन जी एक चलते फिरते विश्वकोष थे। कोई भी जिज्ञासु उन्हें फोन करके किसी भी साहित्यिक शंका का समाधान कर सकता था।

8. सम्पादन–कला के महारथी एवं पारखी :

सुमन जी सम्पादन–कला के महारथी थे। वे इस कला में पूर्ण निष्ठावान थे। वे सम्पादन के साथ–साथ कभी–कभी ऐसा चमत्कार भी उपस्थित कर दिया करते थे, जिससे उनकी शैलीगत प्रखरता का उत्कर्ष आभासित होता था। सुमन जी द्वारा सम्पादित 'नारी तेरे रूप अनेक' नामक महत्त्वपूर्ण काव्य संकलन के लिए उनके अनुरोध पर प्रख्यात मनीषी और विचारक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 22–10–1963 के पत्र में स्पष्ट रूप से यह लिखते हुए–"भेज तो रहा हूँ, परन्तु उत्साह नहीं है। बहुत अच्छी तरह देख लीजिए। काम लायक जँचे, तभी छापिये। लिख तो बहुत दिनों से रखा था, पर भेजने में हिचक हो रही थी। अब आपके पत्रों की मार से घबरा गया हूँ। देर के लिए क्षमा करें। यह मन्दः कवियशः प्रार्थी का अच्छा नमूना है", जब 'बोलो

काव्य के मर्मज्ञ' शीर्षक अपनी लम्बी चमत्कारिक गद्य–भूमिका भेजी तो सुमन जी ने मात्र विराम, पूर्ण–विराम–यति–गति के अनुसार कविता का रूप देकर अनुमोदन के लिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी को भेजा और उनसे अनुरोध किया कि यदि भूमिका इस रूप में छपे तो पाठकों को आपकी काव्य–चातुरी का आस्वाद लेकर प्रसन्नता होगी। इस पर आचार्य द्विवेदी जी ने "आपने उसे कविता बना दिया अच्छा किया" लिखकर अपनी सहमति प्रकट की थी। यह उदाहरण सुमन जी की सम्पादन–कला का अच्छा उदाहरण कहा जा सकता है।

सुमन जी की अन्यतम साहित्यिक सेवाओं को दृष्टि में रखकर ही सन् 1966 ई. में राजधानी ही नहीं प्रत्युत् समस्त हिन्दी–जगत् में फैले हुए उनके अनेक शुभैषियों और मित्रों ने मिलकर उनके 50वें जन्मदिवस पर उनका जो भाव–भीना अभिनन्दन किया था, वह जितना नयनाभिराम था, उतना ही अभूतपूर्व भी। उस अवसर पर आपको तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन के कर–कमलों द्वारा 'एक व्यक्ति : एक संस्था' नामक जो विशद अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था, उससे आपके बहुमुखी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में की गई आपकी उल्लेखनीय सेवाओं को दृष्टि में रखते हुए आपको जहाँ 'पश्चिम बंगनागरी प्रचारिणी सभा' ने सन् 1976 में 'पत्रकार शिरोमणि' की उपाधि प्रदान की थी, वहाँ 13 अप्रैल, 1985 को 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' ने भी गाजियाबाद में सम्पन्न अपने 32वें अधिवेशन के अवसर पर आपको सर्वोच्च मानद उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' प्रदान करके आपकी साहित्यिक सेवाओं का सम्मान किया था। सन् 1984 के गणतंत्र दिवस के अवसर पर भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने आपको 'पद्मश्री' की सम्मानोपाधि से अलंकृत किया था। इसी वर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर ने भी आपको 'विद्यावाचस्पति' (डी.लिट्.) की उपाधि प्रदान कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस किया था। मानव संसाधन मंत्रालय ने आपको 2000 रुपये मासिक की 'अमरेटस फैलोशिप' प्रदान करके आपकी साहित्यिक यात्रा को गति देने का प्रयास किया था।

इसके अतिरिक्त अनेक साहित्यिक संस्थाओं ने आपको अनेक मानद उपाधियों से विभूषित किया था। हिन्दी अकादमी, दिल्ली ने आपको 'विशिष्ट साहित्यकार पुरस्कार' से, भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने 20 अप्रैल, 1987 को 'भारतेन्दु पुरस्कार' से और उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की ओर से दीर्घकालीन सेवाओं के लिए हिन्दी–दिवस, 1990 के अवसर पर इक्कीस हजार रुपये के 'संस्थान सम्मान' से पुरस्कृत एवं अभिनन्दित किया था।

सुमन जी दिल्ली परिवहन निगम, नागर विमानन सेवा और जल–भूतल परिवहन मंत्रालय की हिन्दी सलाहकार समितियों के भी सदस्य मनोनीत किए गए थे। आपके साहित्यिक अवदान का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि आपसे सम्बन्धित अब तक क्रमशः 'श्री क्षेमचन्द्र सुमन : व्यक्ति और साहित्यकार', 'आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन : व्यक्तित्व और कृतित्व', 'आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन का सम्पादकीय वैशिष्ट्य' एवं 'आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन के साहित्य का समीक्षात्मक अनुशीलन' नामक चार शोध प्रबन्धों पर विविध विश्वविद्यालयों के शोधार्थियों ने पीएच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। हिन्दी साहित्य के लिए की गई आपकी सच्ची तपःनिष्ठा हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदा–सर्वदा के लिए अमर एवं स्मरणीय रहेगी। आप सच्चे अर्थों में हिन्दी के एक ऐसे मनीषी थे, जो दिवंगत साहित्यकारों का पुण्य श्राद्ध कर उनकी तपःगाथा को अपने 'दिवंगत हिन्दी–सेवी' ग्रंथ में सदा–सर्वदा के लिए अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कृतसंकल्प थे।

ग़ज़ल

डॉ. महेन्द्र अग्रवाल
संपादक (नई ग़ज़ल)
शिवपुरी (मप्र.)
मो. 9425766485

दुआ कबूल हुई माँ की वो घड़ी आई
किसी यतीम की आँखों में रोशनी आई

उजाड़कर मेरे पुश्तैनी काम–धंधों को
फिरा के दर–ब–दर बच्चों को नौकरी आई

निए निज़ाम से, क़ानून से, क़चहरी से
हमारे हिस्से में आखिर तो ख़ुदकुशी आई

हिली नज़र तो वहीं डूबने लगे मंज़र
उदास आंख में शायद कि फिर नमी आई

किसी का कोई नहीं मतलबी जहाँ सारा
तुम्हारे ओंठ पे ये बात तो खरी आई

नया शहर था नए लोग पूछते फिरते
मैं कितने मोड़ से गुज़रा तो वो गली आइ

उसी के जुल्म से सारा शहर परेशां था
हुए चुनाव तो उसकी ही रहबरी आई

मिला के हाथ वो नजरें चुरा के बैठ गये
हमारे खून में तबसे बड़ी कमी आई

निहाल हो गया बच्चा वो एक रोटी से
किसी उम्मीद की आँखों में क्या खुशी आई

उसी मोहल्ले में तलवार खिंच गई यारो
जहाँ पे साथ में त्योहार की खुशी आई

बदल के क़ाफ़िया हुलिया बदल दिया उसने
ग़ज़ल के गाँव से रोती हुई रवी आई

जुबां पे रोक, नज़र पे थीं बंदिशें, फिर भी
हलक़ में चीख़ जो ठहरी तो शायरी आई

पढा जो दाग को, मोमिन को ज़िंदगी समझी
रहे जो साथ में ग़ालिब के बेख़ुदी आई।

आलेख

मनाजिर आशिक हरगानवी : साहित्य सृजन शक्ति

सफिउर रहमान राईन
एडवोकेट
मिलन चौक दरभंगा (बिहार)

अंग धरा के रत्न छिकै ई अंग सूपत महान मनाजिर।
(दिनेश बाबा तपन, भागलपुर)

डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त प्रतिष्ठित विद्वान एवं बहुचर्चित साहित्यकार है। आपकी सृजनात्मक कृतियाँ साहित्य जगत की अमूल्य धरोहर है। साहित्य गुणवत्ता के आधार पर उनकी कृतियाँ श्रेष्ठ मानी जाती हैं। साहित्य की उत्कृष्टता के आधार पर आपका नाम महान साहित्यकारों की सूची में अंकित है।

''अमर मनाजिर रहबै 'हीरा' प्रतिभा बहु आयामी छै
कथाकार कवि चिंतक लेखक बक्ता बड्डी नामी छै।''
(हीरा प्रसाद हरेन्द्र, सुलतानगंज)

''राज जिनको हर कृति में, बोध छै आभास छै
छेदमय आकाश जिनको नाम छै हरगानवी।'' (राजकुमार भागलपुर)

डॉ. मनाजिर हरगानवी चिंतनप्रधान साहित्यकार हैं। उनकी रचनाओं में वैचारिकता मानवतावाद के आदर्श रूपों के दृढ़ नींव पर दार्शनिक मूल्यों के साथ प्रतिस्थापित हैं। मानवतावादी आदर्श के धरातल पर दार्शनिक परिपक्वता के साथ मधुर और आकर्षक छवि के रूप में अपनी आभा का आभास कराती है। गहन विचारशीलता से हमें समाज, परिवेश और आदर्श मूल्यों को समझने और उनके मध्य तारतम्य स्थापित करने में सहजता और सरलता होगी। स्वच्छन्दतावादी राष्ट्रीय चेतना भी यथार्थ के धरातल पर अपनी महिमा ज्योति प्रज्वलित करे, ताकि भारत महान का सांस्कृतिक आदर्श विश्वमानक के रूप में उभर कर आये। आदर्श समाज, महान देश और सांस्कृतिक विरासत के दर्शन को यथार्थ रूप देना मनाजिर आशिक हरगानवी की सोच है, जो उनकी रचनाओं में देखने को मिलती है।

''आत्मबल और ज्ञानबल का योग सेतु
शिखर पर साहित्य के चढ़ते चले हो।'' (अमरेन्द्र कुमार , भागलपुर)

महान अंतर्राष्ट्रीय विद्वान और साहित्यकार डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी को अखिल भारतीय एकता सम्मेलन, बेंगलोर द्वारा अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस 2017 के शुभ अवसर पर 'इन्दिरा प्रियदर्शिनी स्वर्णपदक सम्मान' से सम्मानित किया गया है। यह सम्मान 'शिक्षा' और 'शोध' क्षेत्रों में राष्ट्रीय विकास के दिशा और गति प्रदान करने से संबंधित महान साहित्यिक योगदानों के सम्मान में दिया गया है।

''कर्ममय शुभ मनुजता के पंथ पर तुम
हर समय निज राष्ट्रहित बढ़ते रहो।'' (आमोद कुमार मिश्र, भागलपुर)

डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी की पुस्तक 'मेवा–ए– तल्ख' (वर्ष 1970) से 'मनाजिर आशिक हरगानवी की अदबी आबयारी' पुस्तक (28 फरवरी, 2017) तक के 47 वर्षों के अंतराल में प्रकाशित कृतियों की संख्या 202 है। जो विश्व का अनोखा कृतिमान है। वर्ष 1989 से मार्च, 2017 तक आपके संरक्षण में 24 पीएच.डी. शोध सम्पन्न हो चुका था। इस प्रकार शिक्षा और शोध के क्षेत्र में आपने अनुपम और अद्वितीय कृतिमान स्थापित किया है। उर्दू, हिन्दी और अंगिका साहित्यों में आप प्रकाश स्तम्भ के रूप में हैं। आपके साहित्यिक प्रकाश से हमें नवज्योति मिलती है। आपके योगदान और कृतिमान से सम्मान में 'इमतियाजे और सम्मान' वर्ष 1993 से 'इन्दिरा प्रियदर्शिनी स्वर्ण पदक सम्मान' फरवरी, 2017 तक 25 सम्मान पदकों से सम्मानित किया जा चुका है। विनोबा भावे विश्वविद्यालय ने 'डॉ0 मनाजिर आशिक हरगानवी : हयात और कारनामे' शोध पर डॉ. एम.आलम को पीएच. डी. की डिग्री दी है। यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन द्वारा अंगिका लोकगीत पर आयोजित प्रोजेक्ट में भी डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी ने योगदान समर्पित किया था। इस प्रकार शिक्षा और शोध के प्रति समर्पित सेवा भाव के कारण आपको कई स्वर्णपदक सम्मान से सम्मानित किया गया है।

डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरगावनी ने ग़ज़ल, आज़ाद ग़ज़ल, दोहा ग़ज़ल, ग़ज़ाला, नज्म, हाईकु, माहिया, मुकरी, तिकोनी, कहमन, सह अलगी, त्रिवेणी, रेंगा, दोहा, गीत, अफ़साना, हास्य एवं व्यंग्य, बच्चों का साहित्य, इनशाइया, साहित्यिक पत्रकारिता पर उच्च कोटि की रचनाएँ देकर साहित्य भंडार में वृद्धि की है। अंगिका संस्कृति पर आपने शोध आलेख लिखा है। अंगिका में ''परछाई, जंगल रऽ पहचान, फैसल के रॉ जासूसी, शिकार औरो शिकारी, कोसी–कथा कोसी–गीत और प्रतिनिधि'' लिखी गई है। हिन्दी में 14 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इस प्रकार आप उर्दू, हिन्दी और अंगिका के साहित्यकार हैं।

महान विद्वान डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी की प्रतिभा साहित्यिक रचना और आलोचनात्मक समीक्षा दोनों क्षेत्रों में प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। साहित्यिक रचना कला, चिंतन और मानवीय संवेदना से भरपूर और आनंददायी प्रभावपूर्ण है। साहित्यकार में साधना की शक्ति और सूक्ष्म अनुभूति है तो रचना लोकप्रिय होगी। इनकी रचनाओं में भाषागत सौंदर्य के साथ सामाजिक मूल्यों की मीमांसा नैतिकता और यथार्थ की कसौटी पर होती है। क्योंकि साहित्य जीवन और समाज का दर्पण है। रचना मानव की चित्तवृत्ति का सजीव प्रतिबिम्ब है। समय के अनुसार आये परिवर्तन को भी वह प्रतिबिम्बित करता है। इनकी रचनाओं में वस्तु और रूप का संतुलन अति सुंदर ढंग से मिलता है। जो रचनाओं की गुणवत्ता को विकसित करता है। इससे क्षेत्र की व्यापकता में भी वृद्धि होती है। इनकी सभी रचनाओं में वर्तमान जीवंत रूप में अभिव्यक्त हुआ है। आप सर्वजन हिताय की मंगल कामना से प्रेरित है। सामाजिक विसंगतियों पर आपने बहुत प्रहार किया है। हास–परिहास लेख में आपने विसंगतियों का भी चित्रण किया है, लेकिन उद्देश्य रहा है विसंगतियों का सुधार।

अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यकार डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी की रचना का मुख्य उद्देश्य सर्वहित में सत्य और सौंदर्य का सृजन करना है। इसी से रचना के महत्त्व को रेखांकित किया जाता है। जीवन में संवेदना का ह्रास हो रहा है और सरलता के स्थान पर जटिलताएँ उभर रही हैं, जिसका प्रभाव अभिव्यक्ति के शिल्प पर होता है। संवेदना के स्थान पर विचार को प्रभारी बनाया जा रहा है। डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी उर्दू, हिन्दी और अंगिका साहित्य के सच्चे साधक हैं। उनकी साहित्यिक साधना को समाज और राष्ट्र के जन–जन ने सराहा है और समय–समय पर श्रद्धा सुमन के रूप में पुरस्कारों से भी सम्मानित किया है। साहित्यिक साधना से उत्पन्न श्रेष्ठ रचनाओं की सुगंध अन्य देशों में भी पहुँची और वहाँ के साहित्य प्रेमियों ने भी पुरस्कार से सम्मानित किया है। भारत के लिए यह अत्यन्त गर्व की बात है कि उसके साहित्य साधक डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी को विदेश में भी पुरस्कार से सम्मानित किया है।

How much the moment was pleasent?
received in UK very prestigeous award,
Manazir great literary fluoriscent;
recognition of talent is the reward.

''समेटा पृष्ठों में है अद्‌भुत ज्ञान
विद्वान मनाजिर की है यह शान

साहित्य सृजन का सदा रखता ध्यान
सर्वजन हिताय का करता बखान।''

(एडवोकेट सफीउर रहमान राईन)

आपकी कविताओं में भाव और शैली की गंभीरता होती है, जिसके कारण लोगों का आकर्षण सहज ही कविताओं की ओर बढ़ जाता है। आपकी चेष्टा सदा सामाजिक मूल्यों की स्थापना के प्रति गंभीर रहती है, जिससे कि सामाजिक सोच की प्रक्रिया बदलाव और सामाजिक आदर्श मूल्यों की ओर हो।

डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी भारत के लोकप्रिय विद्वान रहे हैं। आपकी भावनाओं और संदेशों के लिए इन पंक्तियों पर विचार करें।

1. ईल्म की बेशक ऐसी रौशनी
जिससे हो जाती है रौशनी जिंदगी।
2. ईल्म वह शरमाया है इनसान का
जिससे आसां होता है हर एक मसअला।
3. ईल्म इनसान की वुसअत का है सिलसिला
अब कमन्दें फलक पर भी है डालता।
4. जीते हम हैं सदी में एलेक्ट्रान की
जी है डरता कि शायद गजब ढाएगी।

आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के नकारात्मक और भयानक परिणामों की ओर आपने ध्यान आकृष्ट किया है।

1. आज दुनिया है बारुद के ढेर पर
अपने अंजाम से है बशर बे खबर।
2. असलहे हमने इज़ाद ऐसे किये
जो वसीले तबाही के अपनी बने।
3. हिरोशिमा में की हमने बमबारियाँ
नागासाकी में की हमने खूंजेरियाँ।
4. फर्द ऐसा नहीं कोई जिसमें बचा
खूं बहा भी जो मक़तूल का माँगता।

विश्व–शान्ति के समर्थक मानवतावादी विद्वान डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरगानवी का संदेश है–

1. दुशमने इनसान व इनसानीयत के सूनो
असलहे नीस्त व नाबूद अपने करो।
2. दूध के बदले खून होगा/हर चहार तरफ
3. गिध ताक लगाये बैठा है/ छत की मुंडेर पर
4. तेल, सब्जी, गेहूँ/ और पेट्रोल की बातें।
सोचनेवाले भी/ हथियार को सीने से लगायेंगे।

अफगानिस्तान और इराक के दर्द को क्यों नहीं समझा जाता?गाजा की चीखें क्यों सुनाई नहीं पड़ती?कोरिया के नुकसान पर ध्यान क्यों नहीं दिया जाता?आलमी अदालत कहाँ है?मैंने डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरगानवी के विश्वशांति और मानवतावादी दृष्टिकोण के समर्थन में लिखा है–

क्मैज्त्न्ब्ज्प्छ

1-Death and destruction
as far as the eye can see
What a waste of life.
FEAR 2- The life of innocent
the life of civilion has gone
Much fear in my eyes
KILLING 3-Innocent on hurt
by killing fire
We don't deserve it

डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरगानवी का जीवन साहित्य के लिए है। वह साहित्य सेवा के लिए समर्पित है। साहित्य के लिए अद्भुत सेवा, प्रेरणा और नव ऊर्जा को देखकर मुझे गर्व होता है और आशा के दीप जल उठते हैं। यह उनके प्रभावी व्यक्तित्व का ही कमाल है। वह श्रेष्ठता भाव से बिल्कुल ग्रसित नहीं है। उनके कर्म में, वचन में और ध्यान में साहित्य के प्रति जिज्ञासा का भाव परिवर्तित होता है।

डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी के विराट व्यक्तित्व में आकर्षण है। उनके साहित्यिक सेवा, समर्पण और संघर्ष से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पाठकगण अभिभूत हैं। वह मंझे हुए कवि, साधे हुए अफसानानिगार सिद्ध साहित्यिक पत्रकार और अंगिका के साधक हैं। इसी कारण उनका भव्य व्यक्तित्व हर किसी को अपनी ओर मोहित कर लेता है और साहित्य ज्ञान से उसके अंदर साहित्य ज्योति जला देता है।

मैंने हैदराबाद में 'हिस्ट्री आफ अंगिका लैंगुवेज एंड लिटरेचर' का गहन अध्ययन किया था और अपनी भावनाओं को इन शब्दों में व्यक्त किया था।

।दहपां तमचतमेमदजमक प्दकपंश हतमंज बनसजनतमय
च्तवहतमें दक चतवेचमतपजलूं इंपब दंजनतमए
प्जे हतमंजदमें दक पउचंबजं बबमचज डंद्रंपतय
।दहपो वपस दवनतपीमके बीवसंत डंद्रंपतए

डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरगानवी ने अंगिका भाषा में 6 पुस्तकें प्रकाशित की हैं। जिस कारण आपको अंगिका का साधक कहा जाता हैं अथर्ववेद में अंग के विषय में कहा गया है–

'गन्धारिम्भी मृजवदम्यी अंगीभ्यी मागध्य।'

महाभारत में भी अंग का वर्णन मिलता है। प्राचीन बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय में भी इसका वर्णन मिलता है।

प्जे ममउे जींज जीम ।पदहकवउ व ।दहूं मेजंइसपीमक कनतपदह जीम संजम चींम व त्महअमकपे चमतपवकण (बितवदवसवहल व ।दबपमदज प्दकपंए ण्छण् च्तंकींदए चंहम 83) जीमल मूतम मूमसस इम ींअमक ंदक ीपहीसल बनसजनतमकें मूससण

राजा वृहद्रथ अंग का अंतिम शक्तिशाली राजा था। जैन धर्म के 24वें तीर्थकर भगवान महावीर हैं। अंग में तीन जैन धर्म के तीर्थकरण पैदा हुए। गौतम बुद्ध के शिष्य विशाखा का जन्म अंग में हुआ था। अंग की राजधानी चम्पा थी। जिसका प्राचीन नाम मालिनी है। यह व्यापार का मुख्य केन्द्र था। ललित विस्तर में अंगलिपि का वर्णन मिलता है। भरगुराम मित्र प्रजीत की पुस्तक 'इस विहार' में भाषा में अंगिका शब्द का उपयोग किया गया है।

डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी की शोध पुस्तक 'अंगिका जुबान : पर मंजर पेश मंजर' भारतीय प्राचीन इतिहास का विस्तृत वर्णन है, जो अंगिका के प्राचीन वैभाव और सांस्कृतिक धरोहर का एक महान वृतान्त है। इस पुस्तक के प्रकाशन से डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरगानवी एक सफल इतिहासकार के रूप में सामने आते हैं।

अत्यधिक समृद्ध अंग प्रदेश छला
मानव अथाह ज्ञानक भंडार छला।

डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरगानवी की इस पुस्तक में वर्तमान समय में अंगिका साहित्य में किये जा रहे रचनात्मक कार्यों का वर्णन मिलता है। वर्ष 1964 से 2014 तक 74 पुस्तकें कविताओं के संग्रह की हैं 1975 से 2014 तक अंगिका प्रबंध काव्य या महाकाव्य पर 28 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अंगिका में 15 नावल पुस्तकें, 33 कहानी की पुस्तकें, 3 साहित्य का इतिहास और 19 समीक्षा पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। महेश्वरी सिंह महेश, सुमन सौरभ, डॉ. अमरेन्द्र और डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरगानवी के प्रयासों से अंगिका भाषा के इतिहास पर ज्ञानवर्धक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जो एक

ऐतिहासिक कारनामा है।

शिक्षा और शिक्षण विधा के विशेषज्ञ मास्टर मो. हफीज राईन ने लिखा है–''अंगिका हो या मैथिली क्षेत्रीय बोली से ही अंगिका भाषा या मैथिली भाषा का अस्तित्व हुआ। बाद में अंगिका साहित्य सा मैथिली साहित्य के रूप में विधा का भंडार बना। मैं अंगिका और मैथिली को बोली और भाषा दोनों मानता हूँ। अंगप्रदेश और अंगिका भारत की संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। आर्थिक विकास का यह कभी केन्द्र था...अंगप्रदेश सुख और समृद्धि का प्रदेश था। अंगिका लोक नाटक 'जट–जट्टिन' का आदर्श आजत भी एक आदर्श और अनुकरणीय है। लोग कथाओं में राजाभोज, विक्रमादित्य और ऋषि–मुनि को पढ़ने से अपार आनंद और शान्ति का अनुभव होता है।

डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरगानवी ने 'अंगिका जुबान : पस मंजर पेश मंजर' पुस्तक को प्रकाशित कर एक बड़ा कारनामा अंजाम दिया है, जिसके लिए हम सदा आभारी रहेंगे।

1. भैया अजब मनाज़िर आशिक़, अंग जनपद के ई सपूत
2. मानवता के ई पुजारी, रंग भेद के हरदम टारै
3. सब भाषा के महा पुजारी, सबके आदर मान करै छै।

(मथुरानाथ सिंह रानीपुरी, लगमाहाट)

कविता

राम का वंशज या रहीम का बेटा

नसीम साकेती
कंचना बिहारी मार्ग, कल्याणपुर (पश्चिम)
लखनऊ मो0 09415458582

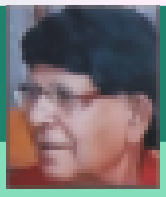

पूछ रही है
सरयू की पावन निर्मल धारा
पूछ रही है अयोध्या
ये कैसा हंगामा...
ये हंगामा क्यों है...
क्या फिर
बाहरी लोगों की आमद है
वोट–नोट का चक्कर है
यही हैं वे लोग
जब देखो कर देते हैं
अयोध्या को अशांत
जबकि
अयोध्या का अर्थ है
'जहाँ युद्ध न हो'
और वे हैं
कि
युद्धोन्माद के नारे लगाते हैं
नफरत के शोलों को हवा देते हैं
राजनीति के तवे पर
सियासत की रोटियाँ सकते हैं
धर्म के नाम पर हिन्दु–मुसलमान बाँटते हैं
इन्सानियत का कत्ल करते हैं
और हम
यानी अयोध्यावासी
राम और रमजान
राम के लिए फूल उगाते हैं
रमिया और रमजानी माला बनाती हैं
राम के चरणों में अर्पित करने के लिए
सादिक उर्फ बाबू टेलर
रामलला के पारंपरिक कपड़े
वर्षों सिले हैं
आज भी पुजारियों, साधु–संतों
के कपड़े सिलते ह
सलीम की पीढ़ी–दर–पीढ़ी
खड़ाऊँ बनाती आई है
राम का वह खड़ाऊँ
जिसे भरतजी ने
सिंहासन पर रखकर
राज किया था
इन्हीं के पूर्वजों का
शाहकार था
कंठी, फूलमाला, पूजन–सामग्री
जिसके सहारे हमारी
रोजी–रोटी चलती है
लेकिन
जब बाहरी उन्मादी आते हैं
कर्फ्यू लग जाता है
जिंदगी पहाड़ बन जाती है
हमें घरों में कैद कर दिया जाता है
फूल–मालायें मुरझा जाती हैं
हमारी चाहतों की तरह
पूजा–सामग्री अपना सिर
पीटकर रह जाती है
हम दाने–दाने के मुहताज हो जाते हैं
भूख को भूख खाने लगती है
राम भी उदास हो जाते हैं
और जब...
कजियाने के सैयद नसीम
लवकुश नगर के पंडित समीर
ईद और दीवाली के दिन
बड़ी शिद्दत के साथ
गले मिलते हैं
अगल–बगल बैठकर
सेवइयाँ और गुझिया खाते हैं
जब हाशिम अंसारी और महंत जी
एक ही कार में
मुकदमें की पैरवी करने जाते थे
फैजाबाद कचहरी में
विशालकाय बरगद के नीचे
महन्तजी की लाई पूड़ियाँ
साथ–साथ बैठकर खाते थे
भाईचारे की मिशाल पेश करते थे
और जब यह शाश्वत सत्य
कानों के परदों से टकराता है
कि
अयोध्या के हिन्दू–मुसलमान
जानते हो क्यों...
इसलिए कि
हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द के साथ
अयोध्या तो 'इमामे–हिन्द'
राम के दिल की गहराई
के शाश्वत प्रेम
की नगरी है
शामे गम बीत चुकी
नीर–क्षीर–विवेक
का काम
कर दिया
उच्चतम न्यायालय
ने
परिणाम स्वरूप
शब्दों के अर्थ
फूलों में सुगंध
की तरह हैं
तब...
इन बाहरी लोगों
प्रेम तथा सौहार्द के
दुश्मनों के सीनों पर
नफरत का साँप
फन फैलाने लगता है
फुफकारने लगता है
जिससे
फसाद की आँधियाँ उठती हैं
खून–खराबा का तूफान
बरपा हो जाता है
देश–विदेश के अनेक शहरों में
हाहाकर मच जाता है
इन्सानियत का दिल दहल उठता है
सिसकियाँ....चीत्कार...खून
देखते ही देखते
जिंदगी लाश बन जाती है
सुषमा की माँग का सिन्दूर पुँछ जाता है
सलमा की चूड़ियाँ फोड़ दी जाती है
आशियाने,
कारखाने जलकर खाक हो जाते हैं
करोड़पति कंगाल बन जाता है
तब भी
अयोध्या शान्त रहती है
रामलला के
भव्य मंदिर
का निर्माण
हो रहा है अयोध्या में
और
अयोध्या के पावन
साये के आंचल
'धन्नीपुर' में
मस्जिद तामीर हो रही है
अब मोहब्बत के चिरागों
को जलाकर
नफरत के अंधेरों
को मिटाना होगा
सदा के लिए
जानते हो
अयोध्या सौ साल
पीछे चली गई थी
लेकिन अब तो
अयोध्या विकास–पथ पर
पूर्व
में
रामजन्मभूमि/बाबरी मस्जिद
के प्रकरण
के जाल में
उलझी बेचैन समय की
अयोध्या को देखकर
मुझपर क्या बीतती थी
शब्द परिधि से बाहर है
क्योंकि
यह टाँग खोलो तो नंगी
वह टाँग खोलो तो नंगी
इसलिए कि
मेरी वंशावली साक्षी है
कि मैं राम का वंशज
रहीम का बेटा हूँ।

संस्मरण

शुभचिंतक और मार्गदर्शक : डॉ. राजेन्द्र पंजियार

डॉ.पंकज साहा
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर (प.बंगाल)
मो. 9434894190

कहते हैं जन्म देनेवाले से पालन–पोषण करनेवाला ज्यादा महान होता है। इसलिए सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से पालन–पोषणकर्ता विष्णु का महत्व ज्यादा है।

मनुष्य के लिए भी जन्म देनेवाले पिता से मार्गदर्शन करनेवाला गुरु ज्यादा महान होता है। इसलिए संत कवियों ने गुरु को उच्चासन पर बैठाया है। संत कवि कबीरदास ने तो गुरु को ईश्वर से भी पहले पूज्य मानते हुए कहा है–

''गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।''

मेरे पिता ने मुझे जन्म दिया, पढ़ाया–लिखाया, पर वे वह मार्गदर्शन न दे सके, जो एक पिता एवं अभिभावक के नाते उनसे अपेक्षित था। कहते हैं कि महाराज शांतनु ने देवव्रत को जन्म तो दिया था, परन्तु वे न तो उन्हें आत्मीयता दे पाये, न समुचित मार्गदर्शन कर सके। शायद इसलिए देवव्रत कठोर होते गये और अंत में अपने पिता के लिए ही उन्होंने भीष्म प्रतिज्ञा कर ली।

मैंने भी अपने जीवन में एक दृढ़ प्रतिज्ञा की थी, जब पिताजी की अनिच्छा के बावजूद स्नातक में विज्ञान की पढ़ाई छोड़कर हिन्दी प्रतिष्ठा में प्रवेश ले लिया था। पिताजी चाहते थे कि मैं इंजीनियर बनूँ, परन्तु मेरी रुचि हिन्दी में अधिक थी। तब पिताजी ने ताना मारते हुए कहा था–''हूँह! हिन्दी पढ़ेगा, एम.ए. करेगा, पीएच.डी करेगा! हिन्दी–फिंदी पढ़ने से अच्छा है जाकर रिक्शा चलाओ।'' उसी क्षण मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह सब करके दिखाऊँगा, जिसके ताने पिताजी मार रहे हैं। उस समय मेरी माँ मेरे साथ मजबूत दीवार की तरह खड़ी थी और मार्गदर्शक बने थे प्रो. डॉ. राजेन्द्र पंजियार।

पंजियार जी मेरे मंझले चाचा के साढू थे और इस नाते मेरे मौसा लगते थे। मेरे प्रति उनका व्यवहार अत्यन्त स्नेहिल था। सच पूछा जाय तो सबके प्रति उनका व्यवहार स्नेहिल एवं मृदु था। परन्तु मुझे वे बहुत मानते थे।

देवघर कॉलेज से हिन्दी प्रतिष्ठा की परीक्षा पास कर मैंने एम.ए. हेतु भागलपुर विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया था। जब पंजियारजी मारवाड़ी कॉलेज में हिन्दी के रीडर थे। तब वे किराये के मकान में रहते थे और अपने अध्ययन सह शयनकक्ष में जिन दो–चार गिने–चुने लोगों को प्रवेश करने की अनुमति देते थे, उनमें मैं भी एक था। हमेशा उन्हें पढ़ते या लिखते देखा। परिचित हों या अपरिचित, उनके पत्र का जवाब वे अविलंब देते। पत्र की भाषा अत्यन्त आत्मीयतापूर्ण होती। संगीत के साधक और साहित्य के विद्वान होने के बावजूद उनमें कभी अहंकार की रेखा मैंने नहीं देखी। मैंने जो पहला पाठ उनसे ग्रहण किया, वह यही है।

मैं उस अर्थ में उनका शिष्य कभी नहीं रहा, जिन्हें क्लास टीचर या ट्यूटर आदि कहते हैं। हाँ,वे मेरे मार्गदर्शक अवश्य थे, उस अर्थ में जिन्हें संत कवियों ने गुरु या सद्गुरु कहा है।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ऐसे क्षण, ऐसी घड़ी, ऐसे दिन अवश्य आते हैं, जब वह निराशा के गहरे सागर में डूब–उतरा रहा होता है। वैसे में एक तिनका भी उसका बहुत बड़ा सहारा बन जाता है। परन्तु मेरे जीवन में पंजियार जी कई बार नाव बनकर आए और मुझे न केवल निराशा के सागर में डूबने से बचाया, बल्कि पार भी लगाया।

मेरी माँ बीमार रहती थी। जब मैं एम.ए. (द्वितीय वर्ष) का छात्र था, वह ज्यादा बीमार हो गयी। मैं भागलपुर में मोहद्दीनगर के पंखाटोली में एक कमरा किराये में लेकर रह रहा था। माँ की बीमारी के कारण मैं देवघर चला गया। उनकी बीमारी बढ़ती गई। देवघर में उनका समुचित इलाज न हो सका। पिताजी उन्हें अगर वेल्लोर या चेन्नई ले जाते, तो शायद बेहतर इलाज होता, परंतु उन्हें कोलकाता मेडिकल कॉलेज अस्पताल पर ज्यादा भरोसा था। वहाँ उनका इलाज तो हुआ, परन्तु वैसा नहीं, जैसा वेल्लोर आदि में होता। कोलकाता से देवघर लौटने के कुछ दिनों बाद ही माँ हम चार भाइयों एवं पिताजी को छोड़ चल बसी। हम चारों भाई निराशा के भँवर में डूबने–उतराने लगे। उस समय पिताजी को एक सच्चे अभिभावक की तरह अपनी मजबूत भूमिका का पालन करना था, परन्तु उन्होंने वैराग्य की चादर ओढ़ ली और हमें अपने हाल पर छोड़ दिया।

बी.ए. में पिताजी की इच्छा के विरुद्ध मेरे हिंदी पढ़ने से वे इतने खफा थे कि एम.ए. की पढ़ाई का खर्च देने के लिए तैयार नहीं थे। तब माँ ने ही मेरा हौसला बढ़ाया था और अपनी जमापूँजी से रुपये देकर मुझे भागलपुर भेजा था। माँ के नहीं रहने पर अब मुझे अपना भविष्य अंधकारमय दिख रहा था। माँ का श्राद्धकर्म आदि समाप्त हो जाने पर एक दिन मैंने पिताजी से पूछा–''मैं आगे क्या करूँ?''

पिताजी ने बेरूखी से कहा–''तुम्हारी जो मर्जी है, करो।''

मैंने एम.ए. करने का विचार छोड़ दिया और राजमहल (झारखंड) चला गया, जहाँ हमारा पुश्तैनी मकान एवं जमीन– जायदाद है। वहाँ मेरे चाचा–चाची रहते थे और उन्हें मुझसे बेहद हमदर्दी थी। जब मैं भागलपुर में पढ़ रहा था, उन्हीं दिनों में बिहार सरकार की ओर से आयोजित होनेवाले एक मासीय रात्रिकालीन पुस्तकालय प्रशिक्षण हेतु एक विज्ञापन अखबार में आया था। प्रशिक्षण भागलपुर के भगवान पुस्तकालय में होना था। उसके लिए मैंने एक आवेदन–पत्र यह सोचकर डाल दिया था कि अगर चयन हो गया तो प्रशिक्षण ले लूँगा। पुस्तकालय विज्ञान का कुछ ज्ञान मिल जाएगा और एक सर्टिफिकेट भी मिल जाएगा। स्थायी पता राजमहल का था। राजमहल में मुझे भगवान पुस्तकालय से भेजा गया पोस्टकार्ड मिला। प्रशिक्षण हेतु मेरा चयन हो गया था। प्रवेश लेने हेतु मैं निश्चित दिन भागलपुर पहुँचा। मेरे किराये के कमरे में एक दीवार–आलमारी थी, जिसमें लकड़ी के पल्ले लगे हुए थे। मैं एम.ए. की सारी पुस्तकें, नोट्स आदि उसी आलमारी में बंद करके गया था। आलमारी खोलने पर देखा कि उसमें रखी सारी चीजों को दीमक चट कर चुकी है। एम.ए. करने का विचार मैं पहले ही छोड़ चुका था, परन्तु बहुत दिनों की संचित सामग्रियों के नष्ट हो जाने को ईश्वर की इच्छा मानकर मैं अत्यन्त मनोयोग से पुस्तकालय विज्ञान का प्रशिक्षण लेने लगा। दिनभर पुस्तकालय विज्ञान की किताबें पढ़ता और रात में क्लास करता। प्रशिक्षण की अवधि समाप्त होते ही परीक्षा ले ली गयी। परीक्षा के बाद मेरे सामने विकट समस्या खड़ी हो गयी कि अब क्या करना है?पिताजी की बेरूखी के कारण देवघर जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। राजमहल में कोई भविष्य नजर नहीं आ रहा था। सोचा पंजियारजी की तो भागलपुर में बहुत बड़े लोगों से जान–पहचान है, शायद वे कोई छोटा–मोटा काम दिलवा दें। माँ की मृत्यु के उपरांत पहली बार उनसे मिलने गया। मुझसे उनको गहरी सहानुभूति थी। मेरी बातें सुनने के बाद उन्होंने मुझसे एक ऐसी बात कही, जिसने मेरे जीवन की धारा ही बदल दी।

उन्होंने कहा–''एम.ए. में आठ पत्र होते हैं। अभी इसी वक्त मैं आठों पत्र के लिए तुम्हारी परीक्षा लूँ, तो मेरी गारंटी है कि तुम सेकंड क्लास से अवश्य उत्तीण हो जाओगे। परीक्षा दो माह बाद होगी। एम.ए. में प्रत्येक पत्र की परीक्षा सप्ताह में एक दिन होती है। यानी दो पत्रों के बीच तुम्हें छह दिनों का पूरा समय मिलेगा। तुम अभी से जी–जान से जुट जाओ। मेरी गारंटी है, तुम्हें फर्स्ट क्लास मिलेगा।''

मैंने दीमक वाली बात बतायी, तो उन्होंने अविलंब एक पत्र लिखा और मुझे देकर कहा–''तुम कल ही जमालपुर चले जाओ। वहाँ मेरा एक छात्र रहता है। वह अपने बैच का टॉपर था और अभी एक कॉलेज में हिन्दी प्राध्यापक

है।मैंने सारी बातें पत्र में लिख दी है।वह तुम्हारी जरूर मदद करेगा।

मैं अत्यन्त उत्साह के साथ उनके पास पहुँचा, लेकिन उन्होंने यह कहकर मेरे उत्साह में पानी फेर दिया कि उनके सारे नोट्स उसकी साली लेकर चली गयी है।

लौटकर मैंने पंजियार जी को सारी बातें बतायीं। उनके घर में टेलीफोन नहीं था।उन्होंने अपने कॉलेज के फोन से उनसे बात की।उन्होंने एक सप्ताह बाद तुझे भेजने को कहा।एक सप्ताह बाद मैं उनसे मिला, तो उन्होंने मुझे कुल सत्रह नोट्स दिये।यानी प्रति पत्र औसतन दो नोट्स।हैरानी की बात यह थी कि उनके सारे नोट्स अत्यन्त बड़े–बड़े थे।उससे भी अधिक हैरानी की बात यह थी कि वे सब के सब गाइड पुस्तकों के हू–ब–हू उतारे हुए थे।

पंजियार ने सब देख–सुनकर कहा–''गाइड से तुम्हें इतने नफरत क्यों है?आखिर गाइड तो कोई प्राध्यापक ही लिखता है।हाँ, भाषा किताबी नहीं होनी चाहिए।''

उस समय वे राँची विश्वविद्यालय की एम.ए. (हिन्दी) की उत्तर–पुस्तिका जाँच रहे थे।उन्होंने जाँची हुई उत्तर–पुस्तिकाएँ निकालकर दिखलायीं।काव्यशास्त्र का पत्र था।एक परीक्षार्थी को सौ में नब्बे अंक मिले थे।मैं आश्चर्य में पड़ गया।कॉपी खोलकर देखा।उत्तर की भाषा एकदम सरल थी।बिना किसी भूमिका के प्रश्नानुकूल उत्तर दिये गये थे।वर्तनी की एक भी अशुद्धि देखने को नहीं मिली।

पंजियारजी ने कहा–''जो विद्यार्थी यह सोचते हैं कि लच्छेदार भाषा में उत्तर लिखने से अंक अधिक आते हैं, वे गलत सोचते हैं।''

मुझे तत्काल देवघर कॉलेज के अपने सहपाठी राजेन्द्र झा 'उजाला' का स्मरण हो आया।उसे हिन्दी के शिक्षकों ने 'हिन्दी का हीरा' की उपाधि दी थी। उसकी भाषा अत्यन्त लच्छेदार थी। उसे काव्यशास्त्र के सभी अंगों–उपांगों के लक्षण उदाहरण सहित कंठस्थ थे।भाषा–विज्ञान, आलोचना, साहित्य का इतिहास को तो मानो उसने घोट लिया था।साइंस से आर्ट्स में आनेवाला मैं एकमात्र विद्यार्थी था।सिर्फ रुचि के कारण मैंने हिन्दी में ऑनर्स लिया था।सच तो यह है कि उस समय मुझे न तो हिन्दी साहित्य के इतिहास का कुछ ज्ञान था, न काव्यशास्त्र, भाषा– विज्ञान या आलोचना का।मैं कक्षा में सबसे पीछे सहमा–सकुचा सा बैठता था।पिताजी के कारण मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी कि हिन्दी में कुछ करना है।उस समय जो कॉलेज शिक्षक ट्यूशन पढ़ाते थे, वे ठेके में पढ़ाते थे।हिन्दी–ट्यूशन का रेट चार सौ से छह सौ रुपये प्रति पत्र था।ट्यूशन पढ़ाने के नाम पर शिक्षक प्रति पत्र आठ–दस महत्वपूर्ण नोट्स लिखवा देते थे।पिताजी मेरे हिन्दी पढ़ने से ही खफा थे।ट्यूशन लेने की बात करता तो आग बबूला हो जाते।अतः मैंने स्वाध्याय का रास्ता चुना।खूब मेहनत की।देवघर में तब तीन कॉलेजों में हिन्दी प्रतिष्ठा की पढ़ाई होती थी। तीनों कॉलेजों से तकरीबन 70–80 विद्यार्थियों ने परीक्षा दी थी।परीक्षा का परिणाम आने पर सब यह देखकर चौंक गये कि उन समस्त विद्यार्थियों में सर्वाधिक अंक मुझे मिले थे।राजेन्द्र झा 'उजाला' का स्थान दूसरा था।

पंजियारजी ने मुझसे कहा था कि तुम्हारे पास समय कम है, अतः सारे पत्रों के गाइड खरीद लो।उन्हें आधार बनाकर अपनी भाषा में नोट्स बनाओ।तुम्हारी भाषा शुद्ध है, तुम्हें फर्स्ट क्लास लाने में कोई रोक नहीं सकता। फिर उन्होंने मुझे व्याख्या में अधिक अंक लाने के गुर बताये।अपनी दिन–रात की मेहनत और पंजियार जी के आशीर्वाद से मुझे सचमुच में एम.ए. में फर्स्ट क्लास मिल गया।

एम.ए. करने के तुरंत बाद मुझे राजमहल के कॉलेज में हिन्दी व्याख्याता की नौकरी मिल गयी।पद गरिमामय था, पर वेतन अत्यन्त दयनीय। मात्र दो सौ रुपये।उसपर भी हर माह नहीं।कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए, तो जैसे विवाह के बाद भारतीय नारी सबसे पहले माँ बनना चाहती है, वैसे ही कुछ अपवादों को छोड़कर एम.ए.करने के बाद भारतीय युवक विशेषकर हिन्दी का विद्यार्थी सबसे पहले पीएच.डी. करना चाहता है।इसी उद्देश्य को लेकर मैं पंजियारजी से मिला। उन्होंने मुझसे रुचि की विधा पूछी। कहानी में मेरी सर्वाधिक रुचि थी।लेकिन मैं कुछ अलग हटकर काम करना चाह रहा था।वह जनवादी क्रांति का दौर था।साहित्य, कला और जीवन के हर क्षेत्र में जनवाद प्रमुख स्वर के रूप में उभरकर आ गया था।मैंने 'हिन्दी कहानी में जनवादी चेतना' विषय पर काम करने की इच्छा जाहिर की।पंजियारजी ने अत्यन्त ईमानदारी से कहा कि विषय तो बहुत अच्छा है, परन्तु जनवाद में मेरी विशेष गति नहीं है। अतः इस पथ पर तुम्हें खुद चलना होगा।हाँ, राधा बाबू (डॉ. राधाकृष्ण सहाय) को जनवाद की अच्छी समझ है।तुम उनसे मिलकर अपना सिनोप्सिस तैयार करवा लो और मेहनत से काम करो।तुम कर सकोगे, मेरा विश्वास है।

उनके विश्वास की जीत हुई।मुझे 1990 में पीएच.डी. की उपाधि मिली। 1992 में पश्चिम बंगाल कॉलेज सेवा आयोग द्वारा मेरी नियुक्ति खड़गपुर कॉलेज में हो गयी।तबसे मैं इसी कॉलेज में हूँ।

मेरी हर उन्नति से पंजियारजी पुलकित होते एवं आशीर्वाद देते। इसी वर्ष 17 मार्च को भागलपुर स्थित उनके निवास में उनसे मुलाकात हुई थी।जून में उनके सुपुत्र की शादी थी।शादी को लेकर वे अत्यन्त उत्साहित थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि सपरिवार शादी में जरूर आना है।कोरोना के कारण भीड़–भाड़ से बचने के उद्देश्य से मैंने कहा था कि आऊँगा जरूर, परन्तु अपने समधी जी के घर में ठहरूँगा।इसपर वे नाराज होकर बोले थे–''हाँ, क्यों नहीं। अब नया संबंध बन गया है, तो हमें तो भूल ही जाओगे।'

उन्होंने अपनी अंतिम प्रकाशित पुस्तक 'बहती रहे त्रिपथगा' (काव्यसंग्रह) मुझे भेंट की।इसके पूर्व उनकी निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं–'हिन्दी कथा साहित्य : पूर्व परिच्छेद', 'युगबोध और हिन्दी' (समीक्षा ग्रथ), 'मई दिवस की गौरवगाथा' (बांग्ला से अनूदित), 'लंबे पड़ावों से गुजरते हुए', 'बकुल की छाँह' (काव्यकृति), 'नाना का छाता', 'बंदर का ब्याह', 'सूरज का गुस्सा' (बाल कविता)। 'कवियों के बापू', 'हिन्दी राष्ट्रभाषा संग्रह', 'राष्ट्रभाषा हिन्दी संग्रह' (पाठ्य पुस्तक), 'राष्ट्रभाषा हिन्दी ही क्यों (सूक्ति संग्रह), 'चन्दनवन' आदि उनकी संपादित पुस्तकें हैं। उनके साहित्यिक अवदानों के कारण देश के विभिन्न साहित्यिक संस्थानों एवं संगठनों ने उन्हें मानद उपाधियों से सम्मानित किया है। 1998 में भागलपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग से विश्वविद्यालय प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त होने के बाद वे स्वतंत्र अध्ययन–लेखन कर रहे थे।वे कभी किसी वाद के जाल में नहीं फँसे।उनकी चिंता एवं चिंतन में केवल एक ही वाद रहा–मानवतावाद।देश, समाज, माँ, बेटी आदि इनके काव्य के मुख्य विषय रहे।'बहती रहे त्रिपथगा' के फ्लैप पर प्रकाशक ने ठीक ही लिखा है–''बेटियों एवं माँ पर केन्द्रित इनकी रचनाओं में कहीं वेदना, कहीं गहरी सामाजिक चेतना, तो कहीं जर्जर रूढ़ियों और अंध परंपराओं पर तीव्र प्रहार है और उनके भंजन की भावना मुखर हो उठी है।''

ईश्वर के बाद इस सृष्टि में दूसरा महान एवं सबसे प्यारा शब्द है–माँ। माँ के प्रति पंजियारजी के हृदयोद्गार उनकी अनेक कविताओं, मुक्तकों एवं दोहों में प्रकट हुए हैं।एक दोहा द्रष्टव्य है–

''बँटवारे में घर मिला, मिला खेत खलिहान
जिसके हिस्से माँ मिली, उसका भाग्य महान।''

ऐसे व्यावहारिक मृदुभाषी सबके शुभचिंतक, शिक्षाविद्, संगीत–साधक, साहित्यकार के अचानक इस कोरोना काल में चले जाने से हिन्दी साहित्य और भागलपुर की अपूरणीय क्षति हुई है।लेकिन जब मैं अपनी क्षति के साथ उन क्षतियों की तुलना करता हूँ, तो लगता है कि मेरी क्षति का पलड़ा भारी है।कम शब्दों में श्रद्धांजलि स्वरूप उनके प्रति अपना हृदयोद्गार अपनी इन पंक्तियों में व्यक्त कर रहा हूँ।

''ता उम्र बने रहे जिनके शुभचिंतक
अब खुद उनको रुलाकर चले गये।''

डायरी

जब मैं बच्चा था : साहित्यकार हरिलाल कुंज

पारसकुंज
भागलपुर (बिहार)
मो.–6201334347

बच्चो! जब मैं तुम्हारी तरह बच्चा था, तब की बात सुनाता हूँ। हो सकता है कुछ भूल भी जाऊँ। लेकिन नहीं, भूलूँगा नहीं। मेरा बचपन घोर गरीबी और अभाव में बीता है। अतः गरीबी और अभाव के कष्टों को भूल पाना संभव नहीं है।

जब मैं मात्र पाँच महीने का अबोध शिशु था, पिता ने साथ छोड़ दिया। ऊपर नीलाकाश और नीचे माँ की गोद के सिवा मेरा कोई नहीं था। कहने को एक सौतेला भाई था, पर उसे मेरे दुःख–सुख से कोई मतलब नहीं था। माँ के मुख से सुना था कि माघ की सिहरती सर्दी में उसने मेरे उसी भाई से मेरे लिए एक गंजी लाने को कहा था, नहीं मिलने का बहाना कर टाल दिया था।

बच्चो! तुम आश्चर्य करोगे कि मुझे दस वर्ष की अवस्था तक पैंट के सिवा कमीज पहनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। कड़कती सर्दी की रातों में माँ के शरीर की गर्मी पाकर सुख की नींद सो लेता था।

जहाँ तक मुझे याद है उस समय मेरा कोई दोस्त न था। होता भी कैसे?कौन गरीब बच्चों से दोस्ती करता?खाने–पहिरने की प्रत्येक वस्तुओं को मैं ललचाई दृष्टि से टुकुर–टुकुर ताकता रहता था।

मेरे घर के बगल में एक सम्पन्न परिवार रहा करता था। मेरी ही तरह उस परिवार में भी मात्र एक लड़का था। कभी–कभी वह मुझसे बात कर लेता, तो मैं गद्‌गद हो जाता। उसके चिकने मौजे और जूतों को एकटक देखता रहता। कभी वह जूतों को खोलकर भीतर जाता, तो मौका पाकर मैं अपने पाँवों को डरता–डरता जूतों में डालता और तनिक आहट पाते ही डरकर निकाल लेता।

उन दिनों जूते पहनना मेरे लिए आकाश–कुसुम के समान था। तेरह वर्ष की अवस्था तक मैं नंगे पाँव घूमा करता। आज के समान सस्ती चप्पलें तब नहीं होती थीं।

अपने महल्ले की अपर प्राइमरी पाठशाला से छठी पास कर मेरा नाम टी.एन.बी. कालेजिएट स्कूल की सातवीं श्रेणी में लिखाया गया। सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के पिता स्वर्गीय गोविन्द प्रसाद वर्मा मेरे हेडमास्टर थे। मेरे हृदय में उनके प्रति असीम श्रद्धा थी।

सौभाग्य से मेरे क्लास टीचर थे–स्व. रामेश्वर झा 'द्विजेन्द्र'। वे हिन्दी के प्रख्यात विद्वान एवं रससिद्ध कवि थे। उनके संपर्क से मेरा सोया साहित्य जगने लगा।

तब मैं आठवीं में आ गया था। उनकी 'किरात–कन्या' नामक एक कहानी प्रकाशित हुई तो वह बेहद चर्चित हो गई। देखा देखी मैंने भी एक आपबीती घटना पर आधारित कहानी 'अन्ना' लिखी, जो उस समय की प्रसिद्ध मासिक 'चाँद' में प्रकाशित हुई। यह एक खानाबदोश लड़की की कहानी थी।

कहानी पढ़कर द्विजेन्द्रजी ने मेरी पीठ ठोककर हृदय से लगा लिया। बच्चो! उनके हृदय की धड़कन आज तक महसूस करता हूँ। कभी–कभी मेरे हेडमास्टर श्रीगोविन्द प्रसाद वर्मा की कवयित्री पुत्री श्रीमती महादेवी वर्मा आती तो द्विजेन्द्रजी के संकेत पर उनसे उनकी स्वरचित कविताओं को पढ़ाने का आग्रह करता तो वे नहीं टालती थीं।

मेरे कोर्स में महादेवीजी की कविताएँ थीं। मुझे याद है, जब वे अपनी प्रसिद्ध कविता–'मैं नीर भरी दुख की बदरी ...' पढ़ाने लगती तो बार–बार साड़ी की कोर से आँखें पोंछती रहती थी। कभी–कभी कई पीरियड तक वे ही पढ़ाती रहती थी। उनसे पढ़ते समय, समय का ज्ञान नहीं रहता था।

साहित्य के अतिरिक्त मुझे चित्रकारी और अभिनय का बेहद शौक था। साड़ी के पाड़ की डिजाइन बनाकर एक रुपये में बेच लेता था। उस समय डिजाइनें 'शान्ति निकेतन' से बनकर आया करती थीं, जो महँगी होती थीं।

जब मैं नवमी श्रेणी में था तो सुना, कोई नये 'ड्राइंग टीचर' आए हैं और ड्राइंग का क्लास कल से ही लेंगे। मैं महीनों उनके क्लास में नहीं गया। क्लास के समय, मैं स्कूल के मैदान में बैठा पत्रिकाएँ पढ़ा करता था।

बच्चो! चित्रकारी के साधारण ज्ञान के कारण ही मैं अहंकारी हो गया था। यह अहंकार ही मुझे उनके क्लास में जाने से रोक रहा था। सोचता था, मैं वहाँ जाकर क्या सीखूँगा?

एक दिन उन्होंने मुझे बुलाकर बड़े प्यार से कहा–''तुम मेरे क्लास में क्यों नहीं आते?'' उत्तर न देकर मैं उद्दंडतापूर्वक केवल मुस्कुराता रहा। मैंने देखा वे सामने रखी ड्राइंग कॉपी में पेन्सिल से कुछ आड़ी–तिरछी रेखाएँ खींच रहे थे। देखते ही देखते मेरे ही चेहरे का स्कैच बन गया।

मैं अवाक् हो उनकी कला को देखता रहा था। तभी उन्होंने कहा–''हाजिरी रजिस्टर में तुम्हारा नाम देखा, तुम्हारा नाम हरि है। यह भी पता चला कि ड्राइंग में तुम्हारी रुचि है। क्या मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकता?''

मेरी आँखें डबडबा आयीं। सारा अहंकार पानी बनकर बहने लगा। मैंने झुककर उनका पाँव पकड़ लिया। उस घटना के बाद मैं ड्राइंग क्लास का रेगुलर छात्र हो गया।

प्यारे बच्चो! नतीजा तुम्हारे सामने है। मैं आज एक चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हूँ। मैं कह चुका हूँ कि मुझे अभिनय से भी प्यार था। चंपानगर निवासी स्वर्गीय शारदा आचार्य के हिन्दी यात्राभिनय को देखा तो मुग्ध हो गया। यात्राभिनय बंगाल की देन है। बंगला नाटकों को हिन्दी में रूपांतरित कर मुक्त मंच से अभिनीत किया जाता है। मैंने भी कुछ मित्रों को इकट्ठा कर एक 'हिन्दी यात्रा दल' गठित कर लिया।

बच्चो! तुमने प्रसिद्ध कवि और बंगला के अनुवादक स्व. पं.हंसकुमार तिवारी का नाम अवश्य सुना होगा। वे मेरे अग्रज तुल्य थे। उन्हीं के संपर्क से मैंने बंगला से हिन्दी अनुवाद की कला सीखी और अपनी यात्रापार्टी के लिए कई नाटकों का अनुवाद किया।

बंगला के सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्व. डॉ. बलायचन्द्र मुखोपाध्याय 'बनफूल' के दो उपन्यास और कुछ कहानियों का भी अनुवाद मैंने किया है।

वर्तमान केन्द्रीय मिनिस्टर श्रीभागवत झा आजाद भी मेरे सहपाठी रहे हैं। अंग्रेजी शासनकाल में इनकी एक कविता बड़ी प्रसिद्ध थी। कविता का शीर्षक था–'अष्टमें एडवर्ड ने क्यों राज्य को ठुकरा दिया था।' उसी कविता ने उन्हें पुरस्कृत करवाया था। हमलोगों में रचना की होड़ लगी रहती थी।

स्कूल में प्रायः सांस्कृतिक आयोजन होते रहते थे, मैं उनमें बढ़–चढ़कर भाग लिया करता था। मेरा एक विशेष कार्यक्रम 'भयानक उछाल' उन दिनों बेहद चर्चित था। जिसमें, मैं प्रायः 8 या 10 फीट की ऊँचाई से तत्काल तोड़े गये काँच के टुकड़ों पर कूदा करता था। लोग इसे जादू या कोई ट्रिक समझा करते थे।

लेकिन मेरे बच्चो! तुम जानते होंगे कि कभी–कभी अभिशाप भी वरदान हो जाता है। तुम्हें बता चुका हूँ कि अभाव और गरीबी के कारण मैं जूते नहीं पहन पाता था। अतः मेरे तलवे बड़े सख्त हो गये थे। काँटों और कंकड़ों के चुभन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। फलतः काँच के टुकड़ों पर निर्भय होकर कूद जाता था। कभी–कभी कोई टुकड़ा गड़ भी जाता तो भोथी चमड़ी से खून नहीं निकल पाता। इस प्रकार अभाव ने मेरे शरीर के स्वभाव को बदल दिया था।

मेरा बचपन अनगिनत खट्टी–मीठी घटनाओं से भरा पड़ा है। आठवीं में ही था, तभी फिल्म जगत के सदाबहार अभिनेता श्रीअशोक कुमार भागलपुर

पधारे। यहाँ उनके मामा रहते हैं। उनके साथ उनकी माँ और पत्नी भी आई थी।

मेरे पास एक साधारण बॉक्स–कैमराथा। उसे ही लेकर मैं उनके पास गया और उनसे चित्र खिचाने का आग्रह किया। उन्होंने मुस्कुराते हुए मेरे प्रस्ताव पर अपनी सहमति दे दी। चित्र लेते समय बगल गले वाला सिल्केन कुर्ता पहन रखा था।

उस समय 'नया संसार' की शूटिंग चल रही थी। वे ही नायक थे। उन्होंने बताया, पूरे फिल्म में यही कुर्ता पहन रखा है। जब मैं उनका चित्र लेने लगा, उन्होंने पोज संबंधी निर्देश माँगा तो मैं झेंप गया। उन्होंने मुझे उत्साहित करते हुए कहा कि निर्देशक का निर्देश मानना ही एक आम अभिनेता की पहचान है। मैं उनके परिवार से इतना हिलमिल गया कि उनकी माँ मुझे, अपने साथ बम्बई ले जाने की जिद्द करने लगी।

लेकिन बच्चो! माँ की ममता ने मुझे आँचल से बाँध रखा था, अतः 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' में बम्बई न जा सका। आशा है मेरे बचपन की बातों से तुम्हें जरूर कुछ मिला होगा। मेरी यात्रापार्टी खूब चल निकली। दूर–दूर से आमंत्रण आने लगा। मैं पार्टी लेकर जाता और काम शेष होते ही तुरंत लौट आता। ऐसा करते हुए मैं अपने क्लास से अनुपस्थित हो जाता। ऐसी अनुपस्थिति के लिए मैंने कभी माफी नहीं माँगी। कभी–कभी जब मैं फीस देने के दिन अनुपस्थित हो जाता, तो द्विजेन्द्र जी मेरी फीस अदा कर देते थे।

एक बार अपनी यात्रापार्टी लेकर नेपालनरेश के पास गया। स्टेट के मैनेजर ने मुझे राजमहल का प्रशाल दिखाया। सजे हुए प्रशाल की शोभा देखकर मैं मुग्ध हो गया, पर नीचे बिछे हुए मोटे कालीन को जब उठा देने का प्रस्ताव रखा तो मैनेजर को पसीना आ गया। उन्होंने कहा–इतनी मोटी और कीमती कालीन को उठाना संभव नहीं है। परन्तु नेपाल नरेश ने सुना तो कालीन उठवा दिया।

उठवाने का कारण यह था कि उतने मोटे और मुलायम कालीन पर यात्राभिनय संभव नहीं था। कलाकारों को उसपर चलने में बड़ी परेशानी थी।

रात्रि आठ बजे उस प्रशाल में नेपालनरेश एवं कुछ विशिष्ट नागरिक तथा दूसरी ओर महारानी और अन्य महिलाएँ बैठी थीं। पूरा प्रशाल आमंत्रितों से ठसाठस भरा हुआ था।

मैंने उठकर यात्राभिनय की परिभाषा और होनेवाले नाटक का सारांश सुनाया। ठीक साढ़े आठ बजे यात्रा शुरू हुआ। मुझे अच्छी तरह याद है, उस दिन 'शैशव साधना' का अभिनय हो रहा था। वह भक्त ध्रुव का चरित्र था। बीच में एक ऐसा दृश्य आया, जब वनवासी ध्रुव अपने पिता के पास भिक्षा याचना करता है और बड़े करुण स्वर में कहता है–'महाराज! माता के प्राण की रक्षा के लिए कुछ खाद्य भिक्षा दीजिए। वह जंगल की कुटिया में बीमार पड़ी है। मेरे पास तो पहनने के लिए भी कपड़े नहीं थे। माँ का आँचल फाड़कर पहना हूँ।

तभी एकाएक दौड़ता हुआ मैनेजर मेरे पास आकर बोला–'खेल बंद कर दीजिए।' किसी राजमहल में यात्रा करने का मेरा पहला मौका था। मैंने डरकर यात्रा बंद कर दिया। उसी समय देखा कि बड़े–बड़े परातों में विभिन्न प्रकार के कपड़े लिये दासियाँ मंच पर आई और ध्रुव बने बच्चे के हाथों में देने लगी। पीछे मालूम हुआ कि वे कपड़े महारानी ने भेजे थे। मैं गद्‌गद हो गया।

बच्चो! मैं कहता–कहता सचमुच कुछ भूल गया। घटनाओं को क्रमबद्ध नहीं कर सकता। इसीलिए केवल अपने स्मरण से ही कह रहा हूँ।

आठवीं में पढ़ते समय ही अपने ड्राइंग शिक्षक के परामर्श पर मैं डिजाइनर बन गया। अपने प्रांत बिहार में उस समय लोग 'सिनेमा स्लाइड' के बारे में पूरी तरह नहीं जानते थे। मैं पहला व्यक्ति था, जिसने बिहार में 'सिनेमा स्लाइड' का निर्माण किया।

'सिनेमा स्लाइड' का उपयोग सिनेमा घरों में विज्ञान के लिए किया जाता है। इस काम से मुझे प्रचुर पैसे मिलते थे। अब मेरे पास पैसों का अभाव नहीं था।

लगभग उसी समय या कुछ पहले मैं प्रसिद्ध रामायणी स्व. पं. राधेश्याम पाठकजी के संपर्क में आया और आध्यात्मिकता मुझमें समा गई। यूँ तो मेरा संस्कार माँ की शिक्षा से ही बन चुका था, पर पंडितजी के संपर्क ने उसे निखार दिया। भारत के प्रख्यात विद्वान पं. इन्दूभूषण गोस्वामी उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं। मैं इनका बाल्य–बन्धू हूँ। इन दिनों वे वृन्दावन में रहते हैं।

मेरी माँ 1962 ई. में स्वर्गवासिनी हो गई, पर उनके आँचल की छाया आज भी मेरे मस्तक पर है। प्यारे बच्चो! ये ही हैं मेरे बचपन की कुछ घटनाएँ। पता नहीं, तुम्हें कैसा लगा? परन्तु मेरी एक सीख याद रखना–'दुख में घबड़ाना मत और सुख में इतराना मत।'

कविताएँ

अंजनी कुमार शर्मा
ब्लोक रोड, सुलतानगंज
भागलपुर, मो.7870825272

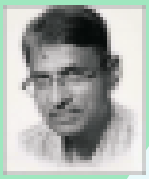

डाल्फिन बचाएँ

डाल्फिन बचाएँ
जलीय जीव डाल्फिन का, अजीब है संसार
पानी में रहा करती, पूरा ही परिवार
गंगा जैसी नदी में, रहती है यह जीव
इसे बचाने का सभी, खोजें कुछ तरकीब
गंगा को साफ रखना, है तो जिनका काम
जीवन में वह कभी ना, करती है आराम
लोगों का न कभी भी, यह करती नुकसान
पर्यटकों को लुभाने, दे रही योगदान
तरंगों से करती है, अपना सभी शिकार
छोटी–छोटी मछलियाँ, है जिनका आहार
स्तनधारी जीव का अब, करें सब देखभाल
घातक न बने अंजनी, मछुआरों का जाल।

मोतीलाल दास
बंडामुंडा, राउरकेला
ओडिशा, 9931346271

1. काल
मौसम बदला
तारीखें बदली
पर नहीं बदला
मेरा समय

वही समय
जिसे तुझे सौंपकर
मैं करता रहा इंतजार
कि बदलेगा समय

ठीक किसी मौसम की तरह

2. नियति
आदमी
लौट आता है
हर रोज
थकहार कर
अपने घर

हो सकता है
किसी दिन
वह लौटे ही नहीं
अपने घर

और विलुप्त हो जाये
जैसे कोई तारा

टूटता है आकाश में
आखिर क्यों

मेरे रंग में
कोई भी रंग
मिलाने से तुम
डरते हो

तुम्हारे रंग में
कई–कई रंग
मिलाने को मैं
आतुर रहती हूँ।

समीक्षा

मानव मन के गहरे अंधेरे कोनों की पड़ताल करता उपन्यास :
दृश्य से अदृश्य का सफर

पंकज सुबीर
संपादक 'विभोम स्वर' सीहोर, (मप्र.)
मो. 7562405545, 9977855399

हिन्दी कथा संसार का दायरा वैसे तो दिनोंदिन विस्तृत होता जा रहा है, फिर भी अभी कई विषय ऐसे हैं, जिनपर बहुत ज्यादा काम अभी तक समाने नहीं आया है। जबकि इन्हीं विषयों पर विदेशों में बहुत काम हुआ है और अभी हो रहा है। नई सदी में हिन्दी कथा साहित्य ने कई नए विषयों की जमीनें तोड़कर वहाँ कहानियों और उपन्यासों की फसल उगाई हैं। कई ऐसे विषय जिनपर पहले बहुत कम बात की जाती थीं, गिने–चुने उदाहरण जिनके मिलते थे, अब उन विषयों पर बहुत काम हो रहा है और लगभग अछूत समझे जानेवाले उन विषयों को नई सदी में सामने आए लेखक खूब उठा रहे हैं। नई सदी का साहित्य एकदम नए नजरिये का साहित्य है, जिसमें कहीं किसी भी विषय से परहेज करनेवाली दिखाई नहीं देती है। शोध करके लिखने की प्रवृत्ति भी इधर काफी दिखाई देती है। क्योंकि, इंटरनेट के कारण शोधकार्य में कुछ आसानी हो गई है। उन दिनों जो उपन्यास सामने आ रहे हैं, वह बहुत अध्ययन और शोध से उपजे हुए होते हैं, उनके पीछे किया गया परिश्रम साफ दिखाई देता है।

सुधा ओम ढींगरा का अधिकांश महत्वपूर्ण लेखन नई सदी में ही सामने आया है तथा उनकी महत्वपूर्ण एवं चर्चित किताबें भी नई सदी में ही सामने आई हैं। इसीलिए उनको नई सदी में सामने आई कथा–पीढ़ी के साथ ही रेखांकित करना होगा। हिन्दी में कथा–समय से ज्यादा वरिष्ठ–कनिष्ठ के दायरों में काम होता है, जो ठीक नहीं है। असल में एक कथा–समय को रेखांकित किया जाना चाहिए। उस कथा–समय में सक्रिय कौन था, कौन अपने समय के परिवर्तनों पर नजर रखे हुए था तथा उसकी रचनाओं में उस परिवर्तन की आहट महसूस हो रही थी, यह सब देखा जाना बहुत जरूरी है। कई सारे वरिष्ठ लेखक ऐसे हैं, जिनकी शैली, शिल्प तथा विषयों में नवीनता दिखाई दे रही है, जबकि कई युवा लेखक ऐसे हैं, जो पारंपरिक ढर्रे पर ही चल रहे हैं, ऐसे में आप नए कथा–समय की बात करते समय किसको उसमें शामिल करेंगे। उस लेखक को जो नया है या उस लेखक को जिसका लेखन नया है?

सुधा ओम ढींगरा का यह दूसरा उपन्यास है, जो सामने आया है। इससे पहले उनका उपन्यास 'नक्काशीदार केबिनेट' लगभग पाँच साल पहले आया था और पाठकों तथा आलोचकों दोनों ने इसे खूब सराहा था। उस उपन्यास की कहानी भारत और अमेरिका के बीच आवाजाही करती रहती थी। एक तूफान को प्रतीक बनाकर सुधा ढींगरा ने कई सारे तूफानों की चर्चा उस उपन्यास में की थी। 'दृश्य से अदृश्य का सफर' सुधा ओम ढींगरा का नया उपन्यास है, जो भारत में कोरोना की दूसरी लहर की भयावहता के दौरान सामने आया है। यह उपन्यास एक ऐसे विषय पर आधारित है, जिस पर हिन्दी में बहुत कम काम हुआ है। कुछेक उपन्यास ही इस विषय पर दिखाई देते हैं। मनोविज्ञान पर तो बहुत काम दिखाई देता है, लेकिन मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर बहुत कम ही काम इधर दिखता है। यह दिखता भी है तो वह इतना कठिन और जटिल है कि हिन्दी के पाठक के लिए उसे समझना भी एक समस्या हो जाता है। यह विषय इतना जटिल है कि इसपर लिखते समय कठिन हो जाने की समस्या से पार पाना मुश्किल हो जाता है। लेकिन 'दृश्य से अदृश्य का सफर' एक जटिल विषय पर सरलता से लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने मनोवैज्ञानिक समस्या को विषय बनाया है और इस कठिन विषय को बहुत सहजता के साथ पाठक के सामने रख दिया है। पाठक इस उपन्यास को पढ़ते हुए जटिलता के चक्रव्यूह में नहीं उलझता है तथा किसी प्रवाहमय धारा के साथ बहता हुआ चला जाता है। कठिन विषय पर सरल उपन्यास लिख देना लेखक की पहली सफलता है।

'दृश्य से अदृश्य का सफर' की कहानी प्रारंभ तो होती है, कोरोना की उस पहली लहर के साथ, जो 2020 में पूरे विश्व में एक साथ आई थी, लेकिन कहानी चूँकि कोरोना की नहीं है कुछ और है, इसलिए बहुत जल्द कहानी कोरोना को छोड़कर अपने मूल विषय पर आ जाती है। सुधा ओम ढींगरा ने अपने पिछले उपन्यास की तरह इसमें प्रतीक के रूप में कोरोना का उपयोग किया है, किन्तु उस प्रतीक के माध्यम से बिल्कुल अलग कहानी कही है। पिछले उपन्यास में तूफान था, इसमें कोरोना है। वह उपन्यास तूफान की कहानी नहीं था, यह भी करोना की कहानी नहीं है। लेखक ने केवल टेकऑफ के लिए तूफान या कोरोना का केवल रनवे की तरह उपयोग किया है, एक बार कहानी रनवे को छोड़ देती है, तो फिर वह दूसरी दुनिया में पहुँच जाती है। फिर उस रनवे की कोई कहानी नहीं, अब उस आसमान की कहानी है, जिसमें कहानी उड़ रही है। रनवे अंत में आता है, जब कहानी वापस आकर लैंड करती है। यह बहुत ही दिलचस्प शैली है कहानी कहने की। किसी प्रतीक को इतनी खूबसूरती के साथ उपयोग करना कि कहानी के मूल विषय के साथ उसका तेल–पानीवाला रिश्ता बना रहे, साथ भी रहें और अलग भी रहें। कहानी असल में घटना नहीं होती है, कहानी का विषय जरूर घटना से आ सकता है। लेकिन, उस विषय का ट्रीटमेंट लेखक किस प्रकार कर रहा है, वह किसी प्रकार उस विषय का उपयोग कर रहा है कि पढ़ते समय पाठक को वही कहानी लगे, घटना नहीं लगे। यह उपन्यास इस शैली को समझने का एक अच्छा उदाहरण है कि किस प्रकार किसी घटना का उपयोग कहानी में किया जाता है।

प्रवासी भारतीयों के लेखन ने हिन्दी में एक नई दुनिया के झरोखे खोलने का काम किया है। यह लेखन भारतीय–दृष्टि से उस देश को देखता है, इसीलिए यह लेखन भारतीय पाठकों के अंदर पैठने में सफल रहता है। 'दृश्य से अदृश्य का सफर' का सफर भी एक ऐसा ही उपन्यास है। यह उपन्यास कहानी तो अमेरिका की कहता है, किन्तु नजरिया भारत का ही रहता है। कहानी का मुख्यपात्र अमेरिका में बसा हुआ भारतीय है। उस पर विषय ऐसा है, जो दुनिया के हर हिस्से में एक सा ही है। मनोवैज्ञानिक समस्याएँ जिनको हम अज्ञानतावश बीमारी भी कहते हैं। यह उपन्यास उन लोगों को अवश्य पढ़ना चाहिए, जो मनोवैज्ञानिक समस्याओं को बीमारी कहते हैं, समझते हैं। यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक समस्याओं को देखने के नजरिये में आमूलचूल परिवर्तन ला देता है। इस उपन्यास को पढ़ने के बाद किसी ऐसे व्यक्ति को देखने का पूरा दृष्टिकोण बदल जाता है। लेखक की एक और सफलता यह है कि यह उपन्यास बहुत अच्छे से समझाता है कि मनोवैज्ञानिक समस्याएँ असल में जीवन में आ रही कुछ बड़ी मुश्किलों, असाधारण घटनाक्रमों तथा इन सबसे उपजे भय का ही परिणाम होती हैं। जब यह भय समाप्त हो जाता है, तो समस्याएँ भी समाप्त हो जाती हैं। यह इस उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तथा जरूरी बिन्दु है। लेखक ने मनोवैज्ञानिक समस्या से जूझ रहे व्यक्ति के अंदर बैठे भय को परत दर परत खोला है। और न केवल खोला है, बल्कि समाधानप्रद तरीके से खोला है। साहित्य का कार्य भी तो यही होता है कि वह समस्या तक न रुके, बल्कि आगे बढ़े वहाँ तक, जहाँ समस्या का समाधान है।

कहानी भारतीय मूल की डॉ. लता भार्गव के अनुभवों का सहारा लेकर आगे बढ़ती है। डॉ. लता भार्गव जो एक साइको लॉजिस्ट हैं तथा फैमिली काउंसलिंग का काम करती हैं। उनके स्मृतिकोश में कुछ ऐसे जटिल केस सुरक्षित हैं, जो सबसे चुनौतीपूर्ण केस थे उनके लिए। कोरोना के कारण चारों तरफ पसरे हुए लॉकडाउन से जो फुरसत का समय मिला है, उसमें डॉ. भार्गव उन केसिज की यादों के गलियारे में जाती हैं और याद करती हैं उस समय को। कोरोना उस उपन्यास के लिए रनवे का काम करता है, जैसा कि मैंने पहले भी कहा। रनवे इस प्रकार कि कोरोना समय में ही एक पुराना केस फिर से खुलता है। ठीक हो चुके व्यक्ति के जीवन में कोरोना के दहशत भरे समय में समस्याएँ फिर से आ जाती हैं। वह एक बार फिर डॉ. लता भार्गव के संपर्क में आता है और उसके बहाने कहानी कोरोना के धरातल को छोड़कर मनोविज्ञान की दुनिया में पहुँच जाती है। जाहिर सी बात है कि यह जो प्रस्थान है, यह फ्लैशबैक के माध्यम से ही

होता है, क्योंकि सारे पुराने केस कहीं यादों की डायरी में सुरक्षित हैं। डॉ. लता भार्गव उस डायरी के पन्ने पलटती जाती हैं और पाठक रू–ब–रू होता रहता है, उन गहरी अंधेरी सुरंगों से, जिन्हें मनोवैज्ञानिक समस्याएँ कहा जाता है।

इस उपन्यास में डॉ. लता भार्गव के तीन पुराने केसिज की मदद से मनोविज्ञान की जटिल पहेली को बहुत सरल तरीके से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है। पहला केस डॉली पार्टन है, दूसरा सायरा का है तथा तीसरा अनाम महिला का है। पहले दोनों नाम भी असल नाम नहीं है, बल्कि डॉ. लता भार्गव द्वारा उन महिलाओं की विशेषताओं के आधार पर दिये गये नाम हैं। पहली का चेहरा–मोहरा मशहूर अमेरिकन गायिका डॉली पार्टन से मिलता है, इसलिए उसे वही नाम से बुलाता हैं डॉ. लता भार्गव और दूसरी भारतीय अभिनेत्री सायरा बानो से मिलती–जुलती शक्ल की है, इसलिए उसे सायरा नाम मिला। तीनों कहानियाँ महिलाओं की हैं। असल में सभ्यता के विकास के क्रम में सबसे ज्यादा तनाव महिलाओं के ही हिस्से में आया है। जैसे–जैसे यह विकास का क्रम आगे बढ़ रहा है, वैसे–वैसे यह तनाव भी बढ़ रहा है। इसलिए मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं को ही अधिक करना पड़ता है। बल्कि कहा जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि महिलाओं के मूल में कहीं न कहीं पुरुष ही होता है। कम से कम तीन कहानियों से गुँथे हुए उपन्यास को पढ़ने के बाद तो यही कहा जा सकता है। पुरुष को यह समस्या कैसे हो सकती है, वह तो स्वयं की समस्या है।

सुधा ओम ढींगरा ने उपन्यास में कोरोना समय में चल रही कथा के साथ इन तीन कहानियों को गूँथा है। जो कहानी कोरोना समय में चल रही है, वह एक डॉक्टर परिवार की कथा है। परिवार में सभी सदस्य डॉक्टर हैं और सब अपने–अपने स्तर पर कोरोना के वॉरियर्स का कार्य कर रहे हैं। ऐसे में जब कहानी फ्लैशबैक से वापस वर्तमान में आती है, तो बहुत सारी नई सूचनाएँ, जानकारियाँ पाठकों को मिलती हैं। ऐसी सूचनाएँ जो बिल्कुल नई हैं। लेकिन यह सूचनाएँ मुख्य कथा को बोझिल नहीं करतीं। कहीं ऐसा नहीं लगता कि इनको कहानी में जबरन डाला गया है। यह सूचनाएँ बहुत सहजता से कहानी का हिस्सा बनते हुए आती रहती हैं। विदेश में बसे हुए चिकित्सकों के नजरिये से कोरोना समय को देखना इस उपन्यास का एक और रोचक पहलू है। भारतीय चिकित्सा–तंत्र और विदेश के चिकित्सा–तंत्र में क्या अंतर है, उसे इस उपन्यास को पढ़कर समझा जा सकता है। बहुत सूक्ष्म दृष्टि से लेखक ने वहाँ के चिकित्सा–तंत्र की पड़ताल की है और वह सारी जानकारियाँ संवादों के माध्यम से पाठक तक पहुँचती हैं। किसी विषय पर शोध करना अच्छी बात है, लेकिन उसके बाद सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है, उस शोध के परिणामों को कहानी में कैसे पिरोया जाए। कहानी को शोधपत्र हो जाने से बचाने के लिए यह सलीका बहुत आवश्यक रूप से आना ही चाहिए लेखक को। इस उपन्यास में सुधा ओम ढींगरा ने बहुत सलीके से उन सूचनाओं को कहानी में पिरोया है, जो शोध से प्राप्त सूचनाएँ हैं।

उपन्यास की एक विशेषता यह है कि भले ही तीन कहानियों के माध्यम से मनोविज्ञान की दुनिया की बात कही गई है, लेकिन यह तीनों कहानियाँ बिल्कुल अलग–अलग कहानियाँ हैं। तीनों कहानियों में समस्या के मूल में अलग–अलग कारण हैं और इसी वजह से तीनों कहानियों में समस्या अलग–अलग रूप में सामने आती हैं। परिवार के ही सदस्यों द्वारा सामूहिक बलात्कार, एसिड अटैक तथा क्रूर एवं अत्याचारी पति यह तीन कारण अलग–अलग कहानियों में हैं। तीनों का संत्रास इतना गहरा और भयावह है कि इसकी शिकार में तीनों महिलाएँ मनोवैज्ञानिक समस्याओं से जूझने लगती हैं। और सामान्य स्तर पर नहीं, बल्कि बहुत गंभीर स्तर पर। तीन अलग–अलग कहानियों में तीन बड़े कारणों को लेखक ने उठाया है। तीन कारण जो महिलाओं को पूरा जीवन किसी तूफान की तरह झकझोर कर रख देते हैं और उसके बाद सामने आती हैं मनोवैज्ञानिक समस्याएँ। असल में यही वह बिन्दु है, जिसपर आकर कोरोना की कथा इन तीन महिलाओं की कहानी से एकाकार हो जाती है। जिस प्रकार इन महिलाओं के जीवन में झंझावात आता है, उसी प्रकार समूचे विश्व के जीवन में कोरोना नाम का झंझावात दस्तक देता है और उसके बाद जिस प्रकार उन महिलाओं के जीवन में समस्याओं का प्रवेश होता है। उसी प्रकार समूचे विश्व के लोगों के जीवन में समस्याओं का आगमन होता है। असल में लेखक ने बहुत गहरे उतरकर इस साम्य को स्थापित किया है और कहीं–न–कहीं यह स्थापित करने की कोशिश की है कि कहीं भी, कुछ भी अकारण नहीं होता है, जो कुछ हो रहा है, उसके पीछे कहीं न कहीं कुछ न कुछ अवश्य होता है।

इस उपन्यास को तीन कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत मनोविज्ञान की समस्याओं के लिए नहीं पढ़ना चाहिए, इनको पढ़ना चाहिए उन समाधानों के लिए, जो तीनों कहानियों में डॉ. लता भार्गव के प्रयासों से सामने आते हैं। कम से कम भारत के पाठकों को तो इन समाधानों के बारे में पढ़ना ही चाहिए, क्योंकि भारत में ही मनोवैज्ञानिक समस्याओं को लेकर सबसे ज्यादा भ्रांतियाँ हैं। भारत में ही इन समस्याओं के बारे में जाने क्या–क्या सोचा और कहा जाता है। डॉ. लता भार्गव जिस प्रकार इन तीनों केसिज पर काम करती हैं, इन तीनों में परिणाम तक पहुँचती हैं, वह बहुत रोचक और दिलचस्प है। इस प्रकार के मामले किसी प्रकार हल किये जा सकते हैं, वह भी इस उपन्यास को पढ़कर पता चलता है। वैसे तो तीनों ही प्रकरणों में समाधान वाला हिस्सा रोचक है, लेकिन तीसरा प्रकरण, जो अमेरिका में रह रही दक्षिण भारतीय महिला का प्रकरण है, उसमें डॉ. लता भार्गव द्वारा जिस प्रकार मामले को हल किया जाता है, वह बहुत दिलचस्प है। मनोवैज्ञानिक समस्या को कोई साइकोलॉजिस्ट इस प्रकार भी हल करता है, यह उपन्यास को पढ़कर पाठक को ज्ञात होता है। असल में यह उपन्यास समाधान का उपन्यास है, समस्या का नहीं है, इसलिए इसे पढ़कर समाप्त कर लेने के बाद पाठक सकारात्मक रूप से बाहर आता है। सुप्रसिद्ध फिल्म 'खामोशी' में वहीदा रहमान एक नर्स के रूप में राजेश खन्ना की देखभाल करते हुए स्वयं समस्या से उलझ जाती है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए डॉ. लता भार्गव में पाठक को इस फिल्म की नर्स राधा की कहानी दिखाने लगती है। मगर वास्तव में कहानी वैसी नहीं है।

उपन्यास की शैली सुधा ओम ढींगरा ने बहुत सहज और सरल रखी है। जब कहानी वर्तमान में होती है, तो संवाद शैली से आगे बढ़ती है और जब फ्लैशबैक में होती है, तो किस्सागोई की शैली में। लेखक दोनों ही शैलियों में सिद्धहस्त हैं, इसलिए उपन्यास की पठनीयता इस आवाजाही में बरकरार रहती है। विशेषकर किस्सागोई में तो सुधा ओम ढींगरा बहुत कुशल हैं, इसलिए जब उपन्यास तीन बार फ्लैशबैक में जाता है, तो किस्सागोई शैली के चलते उपन्यास की रोचकता और बढ़ जाती है। तीनों फ्लैशबैक पाठक की आँखों के सामने चलचित्र की तरह गुजरते हैं। दृश्य दर दृश्य उपस्थित होते हुए। डॉली, सायरा और दक्षिण भारतीय महिला के स्कैच पाठक की आँखों के सामने बन जाते हैं। तीनों कहानियों को बहुत मेहनत से लेखक ने विजुअल माध्यम की तरह गढ़ा है। उपन्यास की भाषा को भी लेखक ने शैली की ही तरह बिल्कुल सहज और सरल रखा है। आम बोलचाल की भाषा में संवाद गढ़े हैं, इस प्रकार की पढ़ते हुए पाठक को अपने ही लगते हैं। जो चिकित्सकीय ब्यौरे हैं, वह भी इस प्रकार हैं कि पाठक को आसानी से समझ आ जाते हैं। इस प्रकार का जटिल विषय उठाते समय इतनी सहज और सरल भाषा तथा शैली लेना बहुत आवश्यक है, जिससे कृति जटिलता का शिकार न होने पाए।

कुल मिलाकर यह उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफर' मानव मन के गहरे अंधेरे कानों की पड़ताल की कहानी है। सुधा ओम ढींगरा ने कुछ नए पन्नों को हिन्दी पाठकों के सामने खोलने का कार्य इस उपन्यास के माध्यम से किया है। यह भी संयोग है कि कोरोना की पहली लहर के बाद लिखा गया यह उपन्यास जब सामने आया, तब भारत दूसरी लहर की भयावहता से जूझ रहा था। हिन्दी में इस तरह के प्रयोग और होते रहें, इसके लिए आवश्यक है कि इस तरह के प्रयोगों का स्वागत किया जाए। इस तरह की कृतियाँ जो एकरसता को तोड़ती हैं और कुछ नई दिशाओं की खिड़कियाँ खोलती हैं, इनके स्वागत करने से आनेवाले समय में इस प्रकार के और प्रयोग सामने आएँगे। यह उपन्यास एक यात्रा है, उस अज्ञात की यात्रा, जो कुहासे में छिपा हुआ अज्ञात है। लेखक ने अपनी भाषा और शैली से इस यात्रा को दिलचस्प और रोचक बना दिया है।

आलेख

मगध-अंचल की लुप्तप्राय लोकक्रीड़ा 'बगुली-दिदिया'

अश्विनी कुमार आलोक
कॉलोनी महनार, वैशाली (बिहार)
मो-8789335785

यदि सामाजिक मान्यताओं ने वर्जनाओं का रूप लिया और उन्हें सांस्कृतिक रूप से स्वीकार भी लिया गया, तो इसका सर्वाधिक दुष्प्रभाव उस समाज की महिलाओं पर पड़ा। चौंसठ के भीतर बंद महिलाएँ पाबंदियाँ झेलती रही और पुरुष समाज उन्हें इन पाबंदियों के लिए हर प्रकार से उपयुक्त समक्षकर एक तरह से उनकी मानवीयता के प्रति अन्याय किया। ग्रामीण महिलाओं ने ऐसी परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत अधिक झेली। समाज की व्यूह रचना को भेद पाना उनकी जातीय शक्ति के प्रतिकूल रहा। इधर के दिनों में महिलाओं ने भी स्वयं को मानवाधिकार एवं लैंगिकता समानता के दायरे में मजबूती से प्रस्तुत किया, परन्तु कुछ दशकों पूर्व तक ग्रामीण महिलाओं ने अनेक प्रकार के विरोध व्यक्त किये। ऐसा नहीं कि महिलाओं ने स्त्रीसुलभ लाज का परित्याग किया, उन्होंने स्त्री लज्जा को अपने संस्कार से जोड़ रखा। फिर भी अपने स्वातंत्र्य एवं जैविक अधिकारों की मांग रखी। इन मांगों का माध्यम बनीं लोकक्रीड़ाएँ। स्त्रियों ने अपने समूह में लोकक्रीड़ाएँ कीं, इनके माध्यम से अपने समूह की स्त्रियों के साथ विमर्श भी किया। वे लोक क्रीड़ाएँ मनोरंजन के रूप में उनकी निजी पीड़ाओं एवं तनावों को दूर करने में सहायक भी रहीं। इन्हीं में से एक है– 'बगुली दिदिया।'

बगुली दिदिया स्त्रियों की लोकक्रीड़ा है। यह स्त्रियों के मनोभावों का विश्लेषण है। वे इस क्रीड़ा के माध्यम से अपनी तरह ही स्त्रियों के अपने विषाद व्यक्त करती हैं। 'बगुली दिदिया' बिहार से निकली लोकक्रीड़ा 'जट–जटिन' की तरह ही है। किन्तु, यह उस प्रकार ख्यात और सार्वदेशिक नहीं हो सकती। 'जट–जटिन' के गीत अपने अंदाज, लय और संवाद के लिए लोकप्रिय रहीं उसपर हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में फिल्म भी बनी, नाट्य–मंचन भी हुए, टेलीविजन चैनलों पर भी उसके आकर्षण को समझा गया। किन्तु 'बगुली दिदिया' मगध अंचल से जन्मी और अब तो उस क्षेत्र में भी लुप्तप्राय ही है। 'जट–जटिन' के कथ्य से साम्य होने के कारण इसे मगही की 'जट–जटिन' कहना उपयुक्त नहीं है। क्योंकि इसके पात्र इस नाम के नहीं है, न ही इसके किसी गीत में 'जट–जट्टिन' का उल्लेख है। ध्यान देनेवाली बात तो यह है कि बिहार के बज्जिकांचल में जन्म स्त्रियों की लोकक्रीड़ा मैथिली एवं भोजपुरी क्षेत्र में जितनी सुख्यात हुई, मगही क्षेत्र में भी उसकी कम पहचान नहीं है। अर्थात् मगही क्षेत्र में 'बगुली दिदिया' या तो 'जट–जटिन' से कम प्रतिष्ठित है या 'जट–जटिन' के समानांतर अपनी पहचान के लिए संघर्ष करती रही है। मगही क्षेत्र की ग्राम्य भावना बिहार के अन्य क्षेत्रों की ग्राम्य भावना से प्रायः भिन्न नहीं है। 'बुगली दिदिया' के संबंध में डॉ. महेश कुमार सिन्हा का मत है। 'बगुली की अभिनय शैली, नाट्य शिल्प और मंच–व्यवस्था प्रायः वही है, जो 'जट–जटिन' के आधार पर बगुली की कथा बनी होगी। एक ही अंतर स्पष्ट दिखाई देता है। वह यह कि भोजपुरी क्षेत्र के अंतर्गत अल्प प्रचलित 'जट जटिन' के अभिनय में स्त्रियाँ बगुली दिदिया आहार्य अभिनय या पोशाक का प्रयोग नहीं करतीं, जबकि बगुली के अभिनय में एक विशेष प्रकार का वेश–विन्यास किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस लोकनाट्य के संबंध में नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से कुछ भी नया कहने को शेष नहीं रह जाता।''

उल्लेखनीय है कि 'बगुली दिदिया' को डॉ. महेश कुमार सिन्हा ने लोकनाट्य माना है। जबकि मगही लोकसाहित्य का विशद विश्लेषण करनेवाली डॉ. संपत्ति आर्याणी इसे नाट्यगीत कहती हैं। अर्थात् नाटक और गीत अथवा गीतों पर आधारित नाटक। डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद ने अपने आलेख 'बिहार के लोकनाट्य' में इसकी इस प्रकार चर्चा है–''बगुली मगध का लोकप्रचलित गीतिनाट्य है। शरद ऋतु में खुले नीले आकाश और मैदान में स्त्रियाँ जमा होकर अभिनय करती हैं। यह अभिनय प्रायः आश्विन के सुखद और सुहावने वातावरण में होता है।''

'बगुली दिदिया' वास्तव में बगुली और दिदिया के बीच में गीति संवाद है। स्त्रियो के दो दल आश्विन माह की चांदनी नहाई रात्रि में बैठते हैं। बैठक के लिए प्रायः वैसे स्थल का चुनाव होता है, जो पुरुषों के संपर्क से अलग हो। अथवा इस स्त्री–समागम से पुरुषों को अलग रखा जाता है। स्त्रियों पर ग्रामीण क्षेत्रों में लगनेवाले उपालंभों को बगुली बनी स्त्री अपने गीत में स्वीकारती है, वह स्वयं वक्तव्य देकर अपने कार्यों का वर्णन करती है। स्त्रियाँ भोजन बनाती हैं, पर पुरुषों और घर की वृद्ध स्त्रियों से पूर्व उन्हें खाने का अधिकार नहीं है। ग्राम्य क्षेत्रों में घर की वृद्ध अथवा नयी नवेली आयी वधु पर पूर्व की पीढ़ी की सास, ननद आदि के द्वारा आरोप लगते रहे हैं कि वे भोजन बनाते वक्त संयम नहीं रख पाती और खा जाती है। पहले स्त्री दल में बड़ा–सा घूंघट काढ़े हुए और बगुले–सा लंबा चोंच लगाकर बैठी स्त्री गीत में दिदिया के प्रश्नों का उत्तर देती है। दिदिया दूसरे दल में बैठी हुई एक प्रमुख स्त्री होती है। दिदिया ने पूछा–'बुगली! कहाँ से नाराज होकर कहाँ जा रही हो?नाराजगी का कारण क्या है?

बगुली ने उत्तर दिया–''चावल छाँटते हुए खुद्दी खा गयी, रोटियाँ बनाते हुए लोइया खा गयी, भात बनाते हुए माड़ पी गई। ससुराल के लोगों ने डाँट दिया, तो रूठकर मैके जा रही हूँ।''

दिदिया भी अपेक्षा के विपरीत बगुली को असम्मानजनक नाम दे दिये–''छुछुंदरी, ललचाही, जिभगरही।' देखा, दिदिया से कह दिया–'तूँ हूँ त दू सफरी के बतिया बोलऽ हे दिदिया।' बगुली और दिदिया के बीच गीत–संवाद इस प्रकार चलता है–

दिदिया– कहवाँ से रूसल कहवाँ जा ह हे बगुली?
बुगली– ससुरा से रूसल नहिरा जाहियो हे दिदिया।
दिदिया– कउन करनमा नहिरा जा ह हे बगुली?
बगुली– चउरवा छँटइते खुदिया खइले हे दिदिया।
दिदिया– तूँ हूँ त ह बड़ छुछुंदरी हे बगुली।
कउन करनमा नहिरा जा ह हे बगुली?
बगुली– रोटिया बनउते लोइया खइली हे दिदिया।
दिदिया– तूँ हूँ त ह बड़ ललचाही हे बगुली।
कउन करनमा नहिरा जा ह हे बगुली?
बगुली– भतवा बनउते मरवा पी ली हे दिदिया।
दिदिया– तूँ हूँ त ह बड़ जिभगरही हे बगुली।
कउन करनमा नहिरा जा ह हे बगुली?

इस संवादगीत के पश्चात् दिदिया का स्त्रीदल मल्लाह स्त्रीदल में बदल जाता है। बगुली नहीं मानती, वह मैके जाना चाहती है, पर रास्ते में पड़नेवाली नदी में नाव लिये हुए लोभी–कामी मल्लाह ने बगुली की देह पर शोभ रहे आभूषणों की मांग की–गले की हँसुली, हाथों का कंगन और दूसरे गहने।

पर, बगुली ने मना कर दिया–गले की हँसुली ससुरजी की दी हुई है,

हाथों का कंगन भैंसुर ने दिये थे और शेष गहने पति ने दिये थे–बगुली–मल्लाह संवाद–

बगुली– हाली आवऽ हाली आवऽ मलहवा हो भइया
जल्दी से पार उतारऽ हो मलहवा भइया
मल्लाह– हमरा तूँ दे द गोरिया गल्ला के हँसुलिया
जल्दी से पार उतारबो गे बगुलिया
बगुली– तूँ हूँ जे मांगे मलहा गल्ला के हँसुलिया
ओहू से पार उतारबो के देबल हे मलहबा भइया
मल्लाह– हमरा तू दे द गोरिया हथवा के कंगनमा
जल्दी से पार उतारबो गे बगुलिया
बगुली– तूँ हूँ से मांगे मलहा हथवा के कंगनमा
ओहू जे हइ भैंसुर के देबल हो मलहवा भइया
मल्लाह– हमरा तूँ दे द गोरिया देहवा के गहनमा
जल्दी से पार उतारबो गे बगुलिया
बगुली– तूँ हूँ जे मांगे मलहा देहवा के गहनमा
से गहनमा सामीजी के देबल हइ रे मलहबा भइया
मल्लाह– हमरा तूँ दे द गोरिया सँचली जवनियाँ
जल्दी से पार उतारबो गे बगुलिया
बगुली– तूँ हूँ जे मांगे मलहा सँचली जवनियाँ
ओहू जे हइ सामीजी के देबल हे मलहबा भइया।

यह लोकक्रीड़ा यहीं समाप्त हो जाती है। यह एक समूह अभिनय भी है और समूह गान भी। बगुली एक समूह की नायिका होती है, दूसरे समूह की दिदिया। तीसरा समूह दिदिया का समूह ही बन जाता है मल्लाह का समूह। समूह की स्त्रियाँ अपनी नायिका अथवा अपने नायक द्वारा गायी जानेवाली पंक्तियों को दुहराती हैं। डॉ. संपत्ति आर्याणी के अनुसार–''बगुली की भाव व्यंजना वाले गीत को महिलाओं का एक दल गाता है। दिदिया एवं मल्लाह के पक्ष का गीत महिलाओं का दूसरा दल। इस प्रकार सामूहिक गीत और अभिनय इसमें होते हैं।''

'बगुली दिदिया' में जट–जटिन का कथा साम्य यह है कि भोजन बनाते वक्त नायक अर्थात् जट, नायिका अर्थात् जटिन की पिटाई करता है। नाराज होकर जटिन नैहर जाती और और इसमें भी मल्लाह उसके यौवन की मांग करता है।

स्त्रियों की मनोदशा दोनों ही लोकक्रीड़ाओं में यह व्यक्त करती है कि वह कठिन परिस्थितियों में भी पर पुरुष अर्थात् मल्लाह को पति की थाती यौवन नहीं सौंप सकती। मगध की यह लोकक्रीड़ा ग्रामीण परिवेश की स्त्रियों की पवित्रता का निरूपक भी है।

मंजरी पांडेय
सारनाथ, वाराणसी
मो. 9973544350

स्वच्छता गीत
आओ कर लें ऐसे काम
जग में देश का होवे नाम

बाग बगीचा या घर आंगन
ऐसी सफाई चमके आनन
गली गली और नगर नगर
भर जाए सुमन सुवासन
जन–जन होठों पर हो आम
स्वच्छता सुघर सुफल आयाम

विद्यालय में पाठ पढ़ाएँ
जीवन कैसे स्वच्छ बनाएँ
मन को स्वच्छ बनाना है तो
तन को कैसे स्वच्छ बनाएँ
नित प्रति चर्चा होवे आम
इसका जीवन में क्या काम
राम नाम धुन इसे बनाएँ
जीवन को उपहार बनाएँ
संगी साथी परिजन सब मिल
स्वच्छता के ही गुण गाएँ
जीवन धन्य करें सुनाम
देश हो स्वच्छ ललित अभिराम

बीमारी तब कोसों भागे
स्वच्छता जब सरपट भागे
बच्चा बच्चा स्वस्थ रहे
माताओं की चिंता सब भागे
स्वच्छता में हो सुबह और शाम
पुण्य का कर लेवें यह काम
गाँधीजी ने रामराज्य का
सपना इक जो देखा था
करने बापू का वो काम।

ज्योति सिन्हा
बी शंकर एपार्टमेंट
बेकार बाँध, धनबाद

फिर लौटता है

लौट आती है शाम
गुजर जाती है रात
आज भी
यहाँ–वहाँ पसरा है सन्नाटा

जहाँ कभी था
बस्ती, बाग, कुआँ
और शोरगुल

रात के आने के
इंतजार में
दिन भी लौटता है
वही भाग दौड़
बच्चों का शोर गुल
दौड़ता है सड़क रात में भी

लौटता है बार बार
मौसम
आंधी, पानी, बरसात
लौट आती है
गर्मी
कड़ी धूप, पसीना
खुल जाती है छतरी
सड़कों पर

कभी नहीं लौटते वे लोग
जो चले गये
बदले में
लौट आता है
नन्हा सा जान

इसलिए तो
सब कुछ लौट आता है

घर बस जाता है
चूल्हा जल जाता है
शहनाई बजती है
और
फिर लौट आता है
उदासी, दुःख, बुढ़ापा
अकेलापन।

लघुशोध

हिन्दी व्यंग्य परम्परा : एक अनुशीलन

डॉ. अवधेश कुमार चन्सौलिया
दीनदयालनगर, ग्वालियर (म.प्र.)
मो. 09425187203

हिन्दी में व्यंग्य का प्रारंभ 19वीं सदी के उत्तरार्ध से हुआ। इस युग के व्यंग्यकारों में भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र के नाम अग्रगण्य हैं। इन्होंने व्यंग्य को यथार्थ से जोड़ा जरूर, लेकिन उसमें व्यापकता और गहराई का अभाव था। हिन्दी व्यंग्य को पूर्ण गरिमामय प्रतिष्ठा मिली, बीसवीं सदी के मध्य में हरिशंकर परसाई के आगमन से। उन्होंने देशी–विदेशी व्यंग्यकारों को पूरी सिद्दत से पढ़ा, भारतीय परिवेश को बारीकी से समझा, स्वयं के और दूसरों के अनुभवों को सहेजा फिर व्यंग्य लिखा। वे लिखते हैं–'सही व्यंग्य व्यापक जीवन–परिवेश को समझने से आता है। व्यापक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश की विसंगति, मिथ्याचार, असामंजस्य, अन्याय आदि की तह में जाना, कारणों का विश्लेषण करना, उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में देखना–इससे सही व्यंग्य बनता है, जरूरी नहीं है कि व्यंग्य में हँसी आए। यदि व्यंग्य चेतन को झकझोर देता है, विद्रूप को सामने खड़ा कर देता है, आत्म–साक्षात्कार कराता है, सोचने को बाध्य करता है, व्यवस्था की सड़ाँध को इंगित करता है और परिवर्तन की ओर प्रेरित करता है, तो वह सफल व्यंग्य है। जितना व्यापक परिवेश होगा, जितनी गहरी विसंगति होगी और जितनी तिलमिला देनेवाली अभिव्यक्ति होगी, व्यंग्य उतना ही सार्थक होगा।''1

इसी आलेख के अंत में वे यह भी कहते हैं कि–''व्यंग्य विधा नहीं है–जैसे कहानी, नाटक या उपन्यास। व्यंग्य का कोई निश्चित 'स्ट्रक्चर' नहीं है। वह व्यंग्य, कहानी नाटक–सब विधाओं में लिखा जाता है। व्यंग्य इस कारण 'स्पिरिट' है।''2 हिन्दी व्यंग्य विधा के तीनों आधारस्तंभ–हरिशंकर परसाई, शरद जोशी एवं रवीन्द्रनाथ त्यागी ने लिखने के लिए विश्वसाहित्य के श्रेष्ठ व्यंग्यकारों के साहित्य को पूरी तन्मयता से पढ़ा है और व्यंग्य विधा पर उनके विचारों को आत्मसात किया है, तब वे श्रेष्ठ व्यंग्यकार बन सके। रवीन्द्रनाथ त्यागी भी व्यंग्यकारों को सलाह देते हैं कि ''प्रत्येक हिन्दी प्रेमी व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह जानथनस्विफ्ट, सरवेंट्स, वुड हाउस, मार्कट्वेन, हेनरी सिसील, रिचर्ड गार्डन, फ्राय, माइक्स, बैटी मैक्डानल, डिकिन्स, लीकाक, जोशैंको, वाल्टेयर, पार्किसन, पीट, जोरेम, गोल्ड स्मिथ (शी स्टूप्स टु कांकर) और चेखव (क्लर्क की मौत, गिरगिट) इत्यादि विश्व साहित्य के महान कलाकारों में पढ़ें, ताकि व्यंग्यकारों की दुखद जिम्मेदारी और उनके बड़प्पन का अहसास हो सके।''3 शरद जोशी ने जो भी व्यंग्य लिखे बहुत उत्कृष्ट लिखे, फिर भी वे अपने लेखन से संतुष्ट नहीं हुए। वे स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं–''तुझे अपनी रचनाएँ इस कारण नापसंद है, क्योंकि वे व्यंग्य होकर भी पूरी तरह से वह काम नहीं करतीं, जो उनसे अपेक्षित है। मैं ईमानदार रहना चाहता हूँ, मैं यश खोकर, सुविधाएँ खोकर भी ईमानदार रहना चाहता हूँ।''4 तात्पर्य यह है कि व्यंग्य लेखन के लिए अध्ययन, अनुभव, करुणा, ईमानदारी और आत्मालोचन अत्यन्त आवश्यक है। इन तत्वों के अभाव में श्रेष्ठ व्यंग्य नहीं लिखा जा सकता।

समकालीन व्यंग्य लेखन में इन विशेषताओं का अभाव है। इसलिए उनके लेखन में वे गुण हैं, जो इन तीनों आधार स्तंभों में है।''कोई भी बड़ा व्यंग्य बड़े विचार और गहरी करुणा के बगैर नहीं लिखा जा सकता। दिल में जितना गहरा दर्द, टीस और करुणा होगी, व्यंग्य की मार उतनी ही चुभीली होगी।''5 इस दृष्टि से चेखव उल्लेखनीय है। चेखव के व्यंग्य में करुणा की अंतर्धारा बहती है। उनकी एक कहानी है 'बाबू की मौत', एक दफ्तर का बाबू थियेटर के दूसरे दर्जे में बैठा है, उसके ठीक सामने ऊँचे दर्जे में आपका साहब बैठा है। साहब गंजा है। बाबू को छींक आती है। उसे लगता है छींक के छींटे साहब की गंजी खोपड़ी पर पड़ गये। वह डरता है। अब उसका मन थियेटर में नहीं लगता। वह बेहद घबराया हुआ है। इंटरवल में आकर वह साहब से कहता है–साहब! माफ कीजिए। मुझसे अनजाने में गलती हो गयी। साहब डाँटता है–क्या बकवास करते हो। खेल खत्म होने के बाद वह फिर माफी माँगता है, परन्तु साहब उसे डाँटकर भगा देता है। उसे अब नौकरी का डर सताता है। वह रास्तेभर बेचैन रहा।दूसरे दिन दफ्तर आते समय, लंच टाइम में और छुट्टी के समय भी वह माफी माँगता है, लेकिन साहब झल्लाकर उसे और अधिक डाँटता है तथा चपरासी से बाहर निकलवा देता है। यहाँ तक कहानी में हँसी आती है और पाठकों का मनोरंजन होता है, लेकिन रास्ते भर वह भयभीत होकर सोचता है कि साहब मुझसे नाराज हैं, अब वे मुझे नौकरी से निकाल देंगे तो फिर मेरे बीबी, बच्चों का क्या होगा?घर आकर वह घबराया हुआ बीबी से पानी माँगकर पीता है और मर जाता है। यह है व्यंग्य में करुणा की अंतर्धारा। चेखव की कहानियों में इसकी प्रमुखता है 'बाबू की मौत' में कठोर नौकरशाही पर करारा व्यंग्य है, जिसमें साहब को अहं के कारण इतनी फुर्सत नहीं कि वे पूछ सकें कि तुम माफी किस बात पर माँग रहे हो, जो तुम सोच रहे हो, वह हुआ ही नहीं। छींटे पड़े ही नहीं, तुम व्यर्थ परेशान हो रहे हो।

हिन्दी के प्रारंभिक व्यंग्य में हल्कापन है। या तो उसमें तीव्र आलोचना है या फूहड़ हास्य, जो पाठकों में संवेदना जाग्रत नहीं कर पाता, क्योंकि उसमें सीधा प्रहार है। वाग्विदग्धता अर्थात् 'विट' का अभाव है। जानसन एवं मार्क ट्वेन के व्यंग्य लेखन से 'विट' प्रमुख है। मार्कट्वेन कहते हैं–''यदि तुम भूखे कुत्ते को रोटी खिला दो, तो वह तुम्हें काटेगा नहीं। आदमी और कुत्ते में यह फर्क है।'' ए.जी. गार्डनर बड़े लोगों का पर्दाफाश इस प्रकार करते हैं–''वह पहले दर्जे का धर्मोपदेशक था, जो रेल के पहले दर्जे में मरा पाया गया, मगर उसकी जेब में तीसरे दर्जे का टिकट था।'' परसाईजी के व्यंग्य लेखन में विट और करुणा दोनों का सुंदर संयोग है। 'भोला राम का जीव, एक तृप्त आदमी, अकाल, जमाखोर की क्रांति, गेहूँ का सुख आदि अनेक व्यंग्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। परसाई का कहने का ढंग अपना अलग ही है। भाषा की जितनी समझ परसाई को है, उतनी अन्य किसी व्यंग्यकार में नहीं है। भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। उन्होंने नये युग के अनुरूप खड़ी बोली की सम्प्रेषणीयता एवं अभिव्यंजना क्षमता को निखारा है। उनकी सूत्रात्मक शैली ने नयी कहावतों ओर मुहावरों का गठन किया है। इससे इनकी भाषा में फैंटेसी की कलात्मकता स्वत: ही आ गयी है। भाषा–सौंदर्य के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है–

1. भीड़ का हृदय होता है, मस्तिष्क नहीं।
2. दूसरे के मामले में हर चोर मजिस्ट्रेट हो जाता है।
3. कमजोरी नैतिकतावाद की माँ होती है और फिर क्षुद्रता तो हमेशा से ही महत्ता का उपदेश देती आयी है।
4. पाप के हाथ में हमेशा पुण्य की पताका लहराती है।
5. बनिया मंदिर में भगवान का मुकुट बनवा देगा, पर किसी को एक पैसा भी नगद नहीं देगा।
6. आत्मा बड़े लोगों का शौक है...अध्यात्म भी धंधा है।
7. धर्म धंधे से जुड़ जाये, इसी को योग कहते हैं।
8. शुद्ध आत्मा चालाक होती है, उसे कोई धोखा नहीं दे सकता।
9. जो पानी छानकर पीते हैं, वे आदमी का खून बिना छना पी जाते हैं।

10. गणतंत्र ठिठुरते हुए हाथों की तालियों पर टिका है।
11. संस्कृति की हड्डी को जब कुत्ते चबाते घूम रहे हैं।
12. इस देश के बुद्धिजीवी शेर हैं, पर वे सियारों की बारात में बैंड बजाते हैं।
13. पैसे कम हों तो आदमी परमहंस हो जाता है।
14. सत्य को झूठ से ज्यादा शर्म आती है।
15. अच्छी आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी, तब फैलाकर बैठ गये, नहीं तो मोड़कर कोने में टिका दिया।
16. मुझे लगता है सभ्यता के बोरे में चूहे घुसकर सड़ गये हैं।
17. भाषा की ऐसी लपट, तीखापन, पैनापन और धार अन्य किसी भी व्यंग्यकार में नहीं मिलती। शरद जोशी के भी व्यंग्य विषय वस्तु की व्यापकता और मारक क्षमता में अचूक है, लेकिन परसाई जैसी सूत्रपरकता उनमें नहीं है। जोशी ने राजनीति और सरकारी तंत्र को बहुत बारीकी से जाँचा–परखा है। उनका एक बहुत प्रसिद्ध व्यंग्य है–'अफसर'। इसमें उन्होंने अफसर की अफसरी का विभिन्न कोणों से व्यंग्यात्म चित्रण किया है। उसके कुछ दृश्य उल्लेखनीय हैं–अफसर अफसर होता है और वह जितना दफ्तर में अफसर होता है, उतना ही नाव में होता है।
18. लोग सोचते हैं, अफसर किस मिट्टी का बना है?मिट्टी तो देशी है, सिर्फ साँचा विदेशी है, जिसमें अफसर ढलता है।
19. वर्षों हो गये। कितने अफसर आये और चले गये। कितनी कुर्सियाँ उनकी वजन से चरमराकर टूटीं और फेंक दी गयी, पर वजन वही रहा।
20. अफसर से दोस्ती नहीं की जा सकती। उससे रिश्ता किया जा सकता है, क्योंकि रिश्ते में नियम होते हैं, दोस्ती में नियम नहीं होते।

और अंत में कहते हैं–अफसर अगर इस किनारे जा रहा है, तो आप उस किनारे जाएइ, इसी में आपकी खैर है।

जोशीजी की भाषा भी निशाने पर सीधा वार करती है। उसमें प्रभावोत्पादकता एवं प्रभविष्णुता दोनों ही गुण विद्यमान है। लेकिन परसाई जैसी सूत्रात्मकता उनके पास कम है। परसाई सुभाषित जैसा लिखते हैं, उनकी रचनाओं में हजारों सुभाषित मिल जायेंगे।

तीसरे बड़े व्यंग्य लेखक हैं–रवीन्द्रनाथ त्यागी। त्यागीजी के व्यंग्य लेखन में हास्य का पुट अधिक है, वे विनोदी भाव से व्यंग्य करते हैं। इसलिए उनके व्यंग्य गुदगुदाते और हँसाते अधिक हैं, रूलाते कम। परसाई के व्यंग्य हँसाते कम, रूलाते अधिक हैं व्यंग्य को सही रूप में कबीर ने परिभाषित किया है–

''सुखिया सब संसार है, खाबै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोबै।।''

तात्पर्य यह है कि सामान्य व्यक्ति केवल अपनों के लिए जीता है, इसलिए वह सुखी रहता है। जबकि व्यंग्यकार चेतना सम्पन्न होता है। इसलिए वह सामाजिक विसंगतियों एवं अत्याचार देखकर जागता है और रोता है। इस दृष्टि से कबीरदास एक सफल व्यंग्यकार सिद्ध होते हैं।

हमारे तीनों हिन्दी व्यंग्यकारों ने कबीर की इस साखी को सिद्धांत वाक्य मानकर व्यंग्य लिखे। इसलिए वे सफल हुए। त्यागीजी का एक व्यंग्य इस दृष्टि महत्वपूर्ण है, वह व्यंग्य है–'कर्मों का बंधन और गीत गोविन्द'। इस व्यंग्य में मंत्रालयों और दफ्तरों के कामचोरी तथा भाग्यवादी को निशाना बनाया गया है। व्यंग्य के कुछ अंश ध्यातव्य हैं–'सारे पापों की जड़ तो कर्म है, कर्मों का बंधन काट दीजिए, बस सुख ही सुख है।'

(2) गीता में भगवान स्वयं कहते हैं कि–''हे पार्थ! कर्मों का स्वरूप सर्वथा त्याग तो कभी हो ही नहीं सकता। प्रकृति का शाश्वत नियम है कि बिना कुछ किये तो प्राणी रह ही नहीं सकता। अरे, और कुछ नहीं तो प्राणी जम्हाई ही लेगा। वह भी तो कर्म है।

समकालीन व्यंग्य सीधा, सरल और सपाट है। उसमें पूर्ववर्ती व्यंग्य की भाँति तल्खी और तीखापन नहीं है। आज के व्यंग्य में उक्ति वैचित्र्य एवं विट कमजोर है, इसका एक नमूना प्रस्तुत है–''मैं शायद मूल विषय से भटक रहा हूँ। यह भटकाव ही लोकतंत्र की दुविधा है। कोई भी अपना काम ईमानदारी से नहीं करना चाहता है। आरोप केवल सरकारी कर्मचारियों पर लगता है, लेकिन हर तरफ एक अजीब किस्म की कामचोरी व्याप्त है...जिन्हें जेल में होना चाहिए था, वो शपथ ग्रहण करके इतरा रहे हैं और जिन्होंने देश की आजादी के लिए संघर्ष किया था, वो यदि अभी तक जिंदा है, तो किसी अंधेरे कोने में उपेक्षा की जिंदगी बिता रहे हैं।''6

इसी तारतम्य में एक और व्यंग्य उल्लेखनी है। महल्ले का तथाकथित नेता बाटूभाई लेखक को समझाता है–''वैलेंटाइन दिवस का शायद युवाओं को इतना इंतजार नहीं रहता होगा, जितना इंतजार उसके विरोधी करते हैं। युवा तो साल के 364 दिन भी एक दूसरे से मिल ही लेते होंगे, परन्तु विरोधियों के लिए तो उनकी प्रतिभा का अवसर दिखानेवाला एकमात्र सुनहरा दिन है। इसी व्यंग्य में बाटूभाई फिर यह कहते हैं कि ''साल के आखिर में चुनाव आ रहे हैं। विरोध जितना तीखा होगा, परिणाम उतना ही मीठा होगा। आज की चिंतन बैठक में हमने स्थानों का चिह्नांकन कर लिया है। उद्यान, रेस्तरा, मॉल, सिनेमागृह, बियावान रास्ते, छोटे–मोटे रास्ते और वीयरवार सभी जगह कार्यकर्ता तैनात करना है। पिछले साल वैलेंटाइन के विरोध में गली नं. 8 वाला बंटी ज्यादा छा गया था और उसका समाचार राष्ट्रीय चैनलों ने भी दिखा दिया गया था। वार्ड की अध्यक्षता उसको उसी के फलस्वरूप मिली। इस बार मेरा लक्ष्य चुनावी टिकट है और वैलेंटाइन ही मुझे लक्ष्य तक पहुँचाएगा।''8

इन व्यंग्य निबंधों में अनुभव की कमी स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। इसलिए ये व्यंग्य इतने प्रभावी नहीं हैं, जितने कि पूर्ववर्ती निबंध हैं। समकालीन व्यंग्य साहित्य पिष्टप्रेषण के भी शिकार हो रहे हैं। कुछ व्यंग्य अच्छे भी हैं और उनमें सम्प्रेषणीयता का गुण भी विद्यमान है। वे पाठक के दिल पर सीधा असर करते हैं, लेकिन ऐसे व्यंग्य संख्या में बहुत कम हैं। समकालीन व्यंग्य रचनाओं में गंभीरता, चिंतनपरकता, करुणा, वाग्विदग्धता, वैविध्य, अनुभव और भाषाकौशल की कमी है। इसका कारण रचनाकारों में बाजारूपन का हाबी होना है। वे कुछ भी लिखकर तुरंत छपा देने के लिए व्यग्र दिखते हैं। इसलिए आज व्यंग्य और व्यंग्यकारों की बाढ़–सी आ गई है, लेकिन अभी तक कोई भी व्यंग्यकार परसाई, शरदजोशी, रवीन्द्रनाथ त्याग की टक्कर का उभरकर नहीं आया है। आज के व्यंग्यकारों में पढ़ने की आदत भी नहीं है और ना ही वे समाज के साथ घुलते–मिलते हैं। वे ड्राइंगरूम में बैठकर अच्छा व्यंग्य लिखना चाहते हैं, लेकिन बिना अनुभव के अच्छा व्यंग्य नहीं लिखा जा सकता।

संदर्भ:

1. हरिशंकर परसाई, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, लेखक की बात, पृ. 10–11, ज्ञान भारती, रूपनगर दिल्ली, सन् 1981
2. वही, पृ. 13
3. रवीन्द्रनाथ त्यागी, उर्दू–हिन्दी हास्य व्यंग्य प्रस्तावना, पृ. 4, प्रकाशन नई दिल्ली, सन् 1993
4. साहित्य अमृत, प्रकाश मनु, फरवरी 2002, पृ. 108, आसफ अली रोड, नई दिल्ली
5. वही, पृ. 108
6. व्यंग्य–यात्रा, अतुल कनक 'दो कौड़ी का आदमी' अप्रैल– सितम्बर 2008, पृ. 69, पश्चिम विहार, नई दिल्ली
7. नई दुनिया, ग्वालियर, मनोज लिमये, विरोधियों का वैलेंटाइन, पृ. 8, दिनांक 5 फरवरी 2013

कहानी

वज़ूद

डॉ. रंजना जायसवाल
छोटी बसही, मिर्जापुर (उप्र.)
मो.–9415479796

सुधा के एम.ए. करते ही घर में जोर–शोर से शादी की बातें चलने लगी। पापा अखबारों और पत्रिकाओं में सर डाले बैठे रहते और अपने लाडो के लिए योग्य वर तलाश करते रहते। कागजों के छोटे–छोटे टुकड़े पर योग्य वर... सुधा को न जाने क्यों कभी–कभी ऐसा लगता वो लड़कों का बायोडाटा नहीं एक लॉटरी है लगी तो ठीक, वरना...। सुधा एक अजीब सा जीवन जी रही थी, हर दूसरे तीसरे महीने घर की साफ–सफाई शुरू हो जाती। चादरें बदली जाने लगती, सोफे के नीचे झाड़ू डाल–डालकर सफाई होने लगती, सुधा माँ की इस हरकत पर मन ही मन मुस्कुरा देती। लड़के वाले उसे देखने आ रहे या फिर उसके घर को...पर माँ का यह भगीरथ प्रयास भी न जाने क्यों विफल हो जाता। सुधा देखने सुनने में ठीक ठाक थी, पर न जाने क्यों लड़केवाले उसे हर बार मना कर देते।

लड़केवालों की मनाही कहीं न कहीं पूरे परिवार को तोड़ देती, कई दिनों तक घर में एक अजीब सी नीरवता छा जाती। सब एक दूसरे से नजरें चुराते, सुधा एक अजीब सी आत्मग्लानि से भर जाती। लड़केवालों के आने से पहले होनेवाले तामझाम के पीछे छिपे अनावश्यक खर्चों से वो कशमशा कर रह जाती। पापा लड़केवालों को लुभाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ते, पर फिर भी...एक अजीब सा अपराधबोध सुधा को लगातार घेर रहा था। लड़केवालों की लगातार मनाही से वो अंदर ही अंदर टूट रही थी। एक दिन माँ भैया पर बुरी तरह चिल्ला पड़ी थी–

''कितनी बार कहा कि सुधा की फोटो किसी कायदे के स्टूडियो में खिचवाओ, पर मेरी सुनता कौन है।''

''माँ! तुम भी न...फोटो का क्या है। मैंने तो उससे कहा भी था एक शेड गोरी करके प्रिंट निकालना पर पता नहीं इन लड़केवालों का कुछ समझ नहीं आता। आखिर उनको बहू लानी है कि हिरोइन।''

माँ न जाने क्यों अचानक वहमी होती जा रही थी। ''सुधा के पापा!.. अबकी लड़केवाले आये तो उन्हें काजू वाली नहीं पिश्ते वाली मिठाई परोसेंगे। शुक्लाइन कह रही थी कि शुभ काम में सफेद नहीं, रंगीन मिठाई खाई और खिलाई जाती है। हो सकता है, लाडो की शादी इसी वजह से न हो पा रही हो।''

सुधा की साड़ियों का रंग भी हर लड़केवाले की मनाही के साथ बदलता जा रहा था। शायद...नवीन और उसका परिवार पिछले महीने ही देखकर गया था, नवीन के परिवार ने सुधा को देखते ही पसंद कर लिया। माँ के पैर तो जमीन पर ही नहीं पड़ रहे थे। सुधा ने भी कहीं न कहीं राहत की साँस ली, इस रोज–रोज दिखावे से वो तंग आ चुकी थी। दो साल का वनवास आज खत्म हो गया था, वो खुश थी शायद इसलिए...क्योंकि घर में सब खुश थे। आजतक वो उनकी खुशी में ही तो खुश होती आई थी। खुद की खुशी क्या है...वो कब का भूल चुकी थी।

पापा और मम्मी नवीन के परिवार से आगे की बात करने के लिए कल सुबह ही निकल गये थे। रात में पापा के फोन आने के बाद घर में एक अजीब सा भूचाल मचा हुआ था। सुधा पूरी रात सो नहीं पाई थी। भैया सुबह–सवेरे ही उसके कमरे में चले आए थे, वो उसे काफी देर तक समझाते रहे। सुधा विचारों के भँवर में डूब–उतरा रही थी। भैया बिस्तर से उठ खड़े हुए।

''सुधा! सोच लो, कोई दबाव नहीं है। पापा–मम्मी...ने मुझपर ये जिम्मेदारियाँ छोड़ रखी हैं। कोई तुम्हारा बुरा नहीं चाहता। तुम जो फैसला लोगी, वो सबको मंजूर होगा।''

भैया ने हाथ बढ़ाकर कमरे के पर्दे को हटाया और कमरे से बाहर निकल ही रहे थे कि सुधा ने पीछे से आवाज लगाई–भैया!

''क्या हुआ...कुछ कहना चाहती हो...बोलो, मैं सुन रहा हूँ।'

भैया चुपचाप बिस्तर पर आकर बैठ गये, सुधा के चेहरे पर एक अजीब–सी बेचैनी थी। वो समझ नहीं पा रही थी कि बात कहाँ से शुरू करें।

''भैया! आप बुरा न मानें तो एक बात पूछूँ...।

''बोल न...मैं सुन रहा हूँ।'' भैया ने बड़े प्यार से सुधा के सर पर हाथ फेरा।

''भैया!...अगर ऐसा ही रिश्ता आपके लिए आया होता तो क्या आप...आप तैयार होते, आप शादी के लिए हाँ कर देते।''

शायद ये बात कहने के लिए सुधा को बहुत हिम्मत जुटानी पड़ी थी, उसके चेहरे पर न जाने कितने रंग आये और गये। उसकी साँसें फूल रही थीं, जैसे वो न जाने कितने मीलों का सफर करके आयी थी। सच ही तो था, वो आज तक एक सफर में ही थी। एक ऐसा सफर जिसकी मंजिल की डोर हमेशा दूसरे के हाथों में थी। आज पहली बार उससे उसका फैसला पूछा गया था। फैसला अपनी जिंदगी का फैसला...आज तक वो सिर्फ दूसरे के फैसले सुनती आई थी और मानती भी आई थी।

शिकायत नहीं थी उसे किसी से...होती भी तो किससे...फैसले लेनेवाले लोग भी अपने ही तो थे, पर आज तक उसकी जिंदगी के फैसले दूसरों ने ही लिये थे। किस साइड से उसे पढ़ना है, कौन से विषय उसे लेने चाहिए, कॉलेज जाने के लिए इस रंग की सूट नहीं...बिल्कुल भी नहीं, पढ़ने जा रहे हैं, कोई बाजार–हाट घूमने नहीं। कॉलेज से इतने बजे तक आ जाना....उफ्! सुधा ने अपने कान बंद कर लिये...चारों तरफ विचारों का एक अजीब–सा कोलाहल था, पर भीतर एक गहरा सन्नाटा पसरा हुआ था। माथे पर पसीने की चंद बूँदें चुहचुहा गई।

''बोलिये न भैया!...क्या आपने ऐसे रिश्ते के लिए हाँ कही होती?''

''नहीं....बिल्कुल भी नहीं।''

''क्यों?''

''मेरे पास इतने सारे विकल्प हैं तो मैं क्यों ऐसी लड़की को पसंद करूँगा। मुझे एक से एक लड़कियाँ मिल जाएँगी। पढ़ा–लिखा हूँ, अच्छा–खासा कमाता हूँ, मुझे लड़कियों की कौन सी कमी...जो मैं ऐसी लड़की से शादी करूँ?''

सुधा आश्चर्य से भैया का मुँह देखती रह गई। भैया अपनी ही दुनिया में मस्त थे। पुरुष होने का दंभ अचानक से उनके चेहरे पर दिखने लगा था, पढ़ी–लिखी तो वो भी थी। शायद परिवार का प्रोत्साहन मिल जाता तो नौकरी भी कहीं न कहीं मिल ही जाती, पर...।

''हमारी जाति में ज्यादा पढ़ाया नहीं जाता। इतना पढ़ा–लिखा लड़का कहाँ से लाएँगे, वैसे ही संभालनी तो गृहस्थी ही है,फालतू में समय और पैसा बर्बाद करना।''

कितनी आसानी से कह दिया था माँ ने, कितना लड़ी थी, उस दिन वो माँ से...

''अपनी जाति में लड़के न पढ़े इसलिए मैं भी न पढ़ूँ, ये कहाँ का न्याय है। मेरे सपनों को क्यों कुचल रही हो माँ!''

न जाने क्या सोचकर सुधा की आँखें भींग गई, पर भैया न जाने किस दुनिया में खोये हुए थे।

''सुधा! गनीमत है लड़केवालों ने कुछ छिपाया नहीं, ये तो उनकी

शराफत है, वो चाहते तो छुपा भी सकते थे। भगवान का शुक्र है हमें शादी से पहले ही पता चल गया।''

''ऐसे कैसे छुपा लेते भैया...शादी–ब्याह का मामला है। दो परिवारों के विकास की बात है। उन्हें लगा होगा किसी तीसरे से पता चले, उससे अच्छा है कि खुद ही बता दें।''

''तू कितनी भोली है, अभी तूने दुनिया देखी ही कहाँ है।''

''भैया! ...उन्हें भी डर था कि अब सगाई तक बात पहुँच गई है, अब नहीं बताया तो सब गडबड हो जाएगा, पर गड़बड़ तो हो गई न...।''

''गड़बड़ कैसी...?''

''इतना बड़ा सच उन्होंने हमसे छुपाया और आप कह रहे हैं...''

''दिक्कत क्या है सुधा! इंजीनियर है...इकलौता है...शहर के बीचोंबीच दोमंजिला मकान है। पूरा परिवार तुम्हें हाथोंहाथ लिये रहेगा और क्या चाहिए तुम्हें...?''

''भैया! उसके पैर में रॉड पड़ी है। कल...!''

''सुधा! वो एक दुर्घटना थी। हड्डी टूट गई, डॉक्टर ने रॉड डाल दी थी। तुमने भी देखा है नवीन के चलने–फिरने में कोई दिक्कत नहीं है।''

''पर कल...!''

''कल क्या...उन्होंने बताया कि रॉड जिंदगी भर भी पड़ी रहे तो भी कोई दिक्कत नहीं और निकाल ले तो भी...।''

''पर...!''

''पर–वर कुछ नहीं।''

सुधा की आशंका गहराती जा रही थी। सुधा के पास इस रिश्ते से इन्कार करने का सारे तर्क भैया ने ध्वस्त कर दिये थे। एक तरफ सबने फैसले लेने के सारे अधिकार भी उसके नाम से सुरक्षित कर दिये थे और दूसरी तर्क पर तर्क दे उसकी शंका, उसके सवालों को ध्वस्त करते जा रहे थे। न जाने क्यों... उसे ऐसा लग रहा था, मानो वो कोई विज्ञापन देख रही हो, जहाँ सामान की कोई गारंटी नहीं लेना चाहता और उद्घोषक वैधानिक चेतावनी के नाम पर नियम–कानून इतनी तेजी से बोलता है कि आप सुनकर भी सुन नहीं पाते।

''सुधा! एक बात कहूँ, पति अपने से कुछ कमतर हो तो जीवनभर एहसान तले दबे रहता है। परिवार तुम्हें देवी की तरह पूजेगा और समाज की नजरों में तुम हमेशा महान बनी रहोगी। जानती हो नवीन की मम्मी बता रही थी कि नवीन ने अपना सर्टिफिकेट भी बनवा रखा है, ट्रेन में उसका टिकट मुफ्त हो जाता है और साथ चलनेवाला का आधा... मौज ही मौज रहेगी तुम्हारी।

सुधा आश्चर्य से भैया को देख रही थी। नवीन अपनी परिस्थितियों से आगे अपाहिज थे, लाचार थे...ईश्वर ने उनके साथ अच्छा नहीं किया, पर क्या ये समाज भी मानसिक रूप से अपाहिज नहीं है। महान बनने का इससे अच्छा शॉर्टकट कोई हो ही नहीं सकता था, कहीं न कहीं इस रिश्ते के लिए पापा–मम्मी और भैया का मन भी गवाही नहीं दे रहा था, जिंदगी भर उसके हर छोटे–बड़े फैसले आज तक वो ही लोग ले रहे थे, पर आज...। कहीं न कहीं भैया ने अपनी बातों से ये जता भी दिया था कि लड़कियों का क्या, उनके लिए कुछ भी चलता है, पर क्या सच में...कल समाज को जवाब देते–देते वो थक जाएगी। कमी उसमें नहीं, नवीन में थी, पर उंगलियाँ हमेशा उसपर उठेगी, जरूर कोई बात होगी जो घरवालों ने ऐसे लड़के से शादी कर दी।

महान बनने का इससे अच्छा मौका उसे नहीं मिलेगा, पर क्या वो सचमुच अपने पति को बेचारे की तरह उम्र भर चाहना चाहती है...आज पहली बार किसी ने उससे उसकी राय, उसका फैसला पूछा, एकबारगी उसे नवीन पर दया भी आती थी, पर कहीं न कहीं वो भी तो समाज के मानसिक विकलांगता की शिकार थी।

सुधा फैसला कर चुकी थी, इस फैसले का जो भी परिणाम हो, पर अब वो समाज की खोखली विकलांगता का शिकार नहीं हो सकती। सभी को अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी, चाहे समाने कोई भी हो।

''भैया! मैं माफी चाहती हूँ, मैं ये शादी नहीं कर सकती। मम्मी–पापा को बता दीजिएगा...लड़केवालों को मना कर दें।''

भैया हक्के–बक्के से सुधा को देख रहे थे, शायद उन्हें सुधा से इस बात की उम्मीद नहीं थी। शायद वो भी ये मानकर चले थे कि लड़कियाँ के लिए कुछ भी चलता है, पर नहीं, बस अब और नहीं। किसी न किसी को तो कदम बढ़ाना ही होगा...सुधा का चेहरा आत्मविश्वास से चमक रहा था। सुधा के एक फैसले ने जता दिया कि लड़कियों के लिए कुछ भी नहीं चलता। सुधा सोच रही थी कि सही मायने में विकलांग कौन था नवीन या फिर समाज...?

ग़ज़ल

धर्मेन्द्र गुप्त
सम्पादक 'समकालीन स्पन्दन'
गायघाट, वाराणसी
मो. 8935065229

1. खुद को बहलाती रहेगी
वेदना गाती रहेगी

सोच लो रचना तुम्हारी
बन के क्या थाती रहेगी

सुर मिले या मिल न पाये
जिन्दगी गाती रहेगी

तेल चुक जायेगा लेकिन
दीप में बाती रहेगी

जिन्दगी का क्या है, वो तो
रोज ग़म खाती रहेगी

अपने सागर से मिलन
ये नदी गाती रहेगी

खोल दो इन खिड़कियों को
रोशनी आती रहेगी

2.
रोज मुझको जाँचता है
दर्द मुझको माँजता है

हर तरफ छाया है कोहरा
सूर्य अब तक लापता है

आदमी बस आदमी है
कब हुआ वो देवता है

नींद ना टूटे किसी की
डरके कोई खाँसता है

झुग्गियाँ कल तक यहाँ थीं
आज चौड़ा रास्ता है

किस तरह का दोस्त हूँ मैं
मेरा दुश्मन जानता है

आप गूँगे हो गये हैं
या हुआ बहरा बहुत मैं

3.
टूटकर बिखरा हुआ मैं
और फिर सँवरा बहुत मैं

वक्त ने खोदा मुझे यूँ
हो गया गहरा बहुत मैं

रंग–सा निखरा बहुत ही
गंध सा बिखरा बहुत मैं

तेजरौ होने दो मुझको
मुद्दतों ठहरा बहुत मैं

कहानी

जीवन का दर्द

विकेश निझावन
संपादक 'पुष्पगंधा'
अम्बाला शहर, हरियाणा
मो. 8168724620

'वो बिट्टो आ गई!' हवनकुंड के चारों तरफ बैठे लोगों के बीच में से एक आवाज उभरी थी। सभी की नजरें एकदम से गेट की ओर उठ गई। मैंने थोड़ा–सा उचककर गेट की ओर देखा। बिट्टो एक हाथ में मुन्ना को लिए और दूसरे हाथ से रिक्शा को थामे नीचे उतर रही थी। हल्के पीले रंग की साड़ी और उलझे–उलझे बालों में वह सचमुच बड़ी सुंदर लग रही थी।

'पंडितजी! आप हवन शुरू कीजिए।' बुआजी का आक्रोश भरा स्वर फूटा था। कारण मैं समझ गई थी। यकीनन उन्हें बिट्टो के देर से आने पर काफी नाराजगी थी, लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि इसका उससे बदला ही लिया जाता। दो मिनट तो रुका ही जा सकता था।

काफी गुस्सा आया था मुझे बुआजी पर, लेकिन दूसरे ही पल यह सब सुखद भी लगा। क्योंकि अब सभी की नजरें गेट से हटकर पंडितजी की ओर जम गईं और अब बिट्टो लोगों के लिए नाहक तमाशा–सा बनकर नहीं रह गई थी।

मैं अब भी तिरछी नजरों से बिट्टो की ओर ही देख रही थी और इस बात का अंदाजा लगा रही थी कि वह मेरे पास चंद मिनटों में पहुँच जाएगी।

थोड़ा–सा एक ओर सरककर मैंने उसके बैठने की जगह भी बना दी। लेकिन यह सोचते ही कि अगर वह कहीं और बैठ गई, मैं निराश हो आई थी।

मुन्ने को रास्ते में ही मालती ने पकड़ लिया था। बिट्टो मेरे ही पास छुई–मुई–सी बनी आ बैठी। थोड़ी ही देर में सभी पंडितजी के मंत्रों में डूब गए तो मैं अपना प्रश्न उठाए बिना न रह सकी–बड़ी देर से पहुँची है री! अजय नहीं आया?

बिट्टो ने क्षणभर को घूरते हुए मेरी ओर देखा, फिर गर्दन झुका ली। आँखों से आँखों में उसने ऐसे माहौल में अपना जवाब देने की शायद असमर्थता प्रकट कर दी थी। मुझे खुद पर गुस्सा आया। क्या यही वक्त था यह सब पूछने का। मेरे आस–पास पचास–सौ व्यक्ति और बैठे हैं, वे सब बहरे तो नहीं।

तभी किसी के आने का आभास हुआ तो मैंने गर्दन उठाकर देखा। शक्ल से जाना–पहचाना व्यक्ति था। लेकिन कौन है, कहाँ रहता है, यह मैं नहीं जानती थी। यों हर जाने–आनेवाले का मैं निरीक्षण कर रही थी। पापा का शहर में जितना नाम था और जिन–जिन लोगों के बीच उनका उठना–बैठना था, क्या उतने लोग आए हैं?

सच में, थोड़ी ही देर के बीच लोगों की एक अच्छी खासी भीड़ जमा हो गयी थी, जो पापा के बड़े होने का अहसास दिला रही थी। आज पापा की बरसी थी। बाहर के लोगों का आना–जाना तो दो रोज पहले ही शुरू हो गया था। मैं भी चार दिन पहले आ गयी थी। इतनी दूर से आओ तो कुछ रोज प्रोग्राम तो बनाकर आना ही होता है।

मेरे यहाँ पहुँचने के पन्द्रह मिनट बाद ही भैया और भाभी रिक्शा से उतरे थे। उनका जल्दी आ जाना मुझे अच्छा लगा था। वरना रास्ते भर मैं घर में छाये मौन और उदासी का सोच–सोचकर डूबी जा रही थी। विशेषकर जब मम्मी का उदास चेहरा आँखों के सामने आ जाता।

मम्मी अभी तक अपने को एडजस्ट नहीं कर पाई है, ऐसा मैं अतुल के पत्रों से जानती चली आई थी। एक वर्ष हमारे लिए काफी लंबा समय था, लेकिन मम्मी के लिए शायद नहीं। यों पापा की याद और उनकी बातें अभी तक दिमाग में जुड़ी थीं, लेकिन उन्हें कभी सोचने या किसी से कहने का वक्त ही कहाँ मिला था। अब वे मात्र एक कहानी की तरह लगने लगी थी, जिसे कभी परदे पर देखा हो।

सुबह की गाड़ी से मंझले भैया और भाभी भी आ गये। साथ में बुआ जी भी थीं, जिन्हें आँखों पर मोटा–सा चश्मा लगाये देख मैं हँस पड़ी थी, 'आपको क्या हो गया बुआजी! इतनी मोटी ऐनक....वैसे आप जँच रही हैं इसमें।

'शर्म नहीं आती कलमुँही! हमलोगों की दीन–दुनिया चली गई और तुझे मजाक सूझ रहा है।' लेकिन इतना मोटा चश्मा लगाकर तो दिन–दुनिया लौट आई होगी।

'अभी कहाँ लौटी है री! अभी तो दूसरी आँख का मोतियाबिन्द उतर रहा है। जबतक उसका ऑपरेशन नहीं हो जाता, नजर कहाँ टिकेगी।' बुआजी ने ऐनक उतारी और शीशे साफ करती हुई बोलीं–'बिट्टो रानी! कहाँ है री?'

क्षणभर पहले बुआजी से मजाक करने का जो मूड बना था, वह बुआजी के प्रश्न के आगे एकदम बुझ–सा गया।

सचमुच जैसे बिट्टो की हमें भी अब याद आई थी। इतनी नजदीक रहते हुए भी पापा की लाड़ली अभी तक नहीं पहुँची थी।

अतुल ने पैनी–सी दृष्टि से मेरी ओर देखा और 'पता नहीं' कहकर बाहर को निकल गया।

'लो, इसे क्या हो गया है। सीधे मुँह जबाव ही नहीं। जब से आई हूँ, एक मिनट भी जीभर कर बात नहीं की इसने। चिट्ठियों में तो क्या–क्या लिखा करता था।

गर्दन झटकती हुई मैं बुआजी की ओर मुड़ी और उखड़े हुए स्वर में बोली, 'उसका ससुराल से आना इतना आसान थोड़े न है। चूल्हे–चक्की से फुर्सत मिलेगी तब न!'

मैंने बात पूरी कही थी, लेकिन मेरी बात पूरी होने तक बुआजी कमरे की दहलीज भी लाँघ चुकी थीं।

पंडितजी की आवाज रुकी तो मेरा ध्यान उस ओर बँटा। हवनकुंड में लकड़ियाँ डाली जा चुकी थीं। छोटी भाभी अंदर से कुछ लेने जाने लगी, तो जाते–जाते उसने एक नजर मेरे और बिट्टो पर फेंकी। यों दोनों भाभियों के चेहरे रुआँसें पड़े थे, लेकिन मंत्रों के उच्चारण के वक्त उनकी आवाज काफी ऊँची रहती। कई बार उनकी आवाज एकदम से रुक जाती, शायद मंत्र पूरी तरह न आने की वजह से। तब मैं बिट्टो की तरफ देखकर तनिक मुस्करा भर देती। प्रत्युत्तर में बिट्टो का भावहीन चेहरा देख मुझे काफी गुस्सा आने लगता।

बड़े भैया ने एक–दो बार पीछे मुड़कर देखा था। शायद वे मुझे आगे आने का संकेत कर रहे थे, लेकिन मैं औरतों में इस कद्र घिरी बैठी थी कि मुझे आगे जाना काफी कठिन–सा लगा। यों भी आगे जाना मेरे लिए मात्र एक औपचारिकता थी। मैं जान बूझकर भैया से दृष्टि चुराती रही।

औरतों के बीच बैठी मैं ममी की स्थानापूर्ति भी तो कर रही थी। घर में बड़ी होने के नाते, लोग मेरे नजदीक ही अधिक आ–जा रहे थे। मम्मी की आँखें इस कद्र कमजोर हो चुकी थी कि हर एक को पहचानना उनके बस की बात नहीं थी और ऐसे मौके पर तो लोग अपनी सूरत दिखलाना ही अधिक जरूरी समझते हैं न! हवन खत्म होते ही सब लोग उठ खड़े हुए। लोगों को विदा करके जैसे ही मैं अंदर आयी, स्टोर की तरफ से किसी की सिसकियाँ सुनाई दीं। मैं तेजी से मुड़ी। देखा, घुटनों में सर छिपाए अतुल था।

'अऽतुल...क्या हुआ रे?' करीब पहुँचकर जैसे ही मैंने उसका चेहरा ऊपर उठाया, वह बच्चों की तरह 'पापा–पापा' कहते हुए मुझसे लिपट गया।

मैं जड़ हो आई थी। आज जाना था कि दुःख–पीड़ा क्या होती है। हमलोग तो अपने–अपने घरों में व्यस्त हो गये। पापा को याद करने की कभी फुर्सत ही नहीं मिली। लेकिन अतुल के आगे अपना और ममी का एकाकी जीवन था, जो पापा की याद हरदम ताजा करवा सकता था।

बालों को सहलाती हुई मैं बोली–'जी छोटा न कर। सब कुछ अब तुम्हीं

ने ही तो सँभालना है।'

दरअसल, पिछले तीन–चार माह से उसने हर पत्र में ममी को लेकर ही लिखा था। कई–कई पंक्तियाँ तो मेरे सामने उभर–उभर कर आने लगी थीं।

'दीदी! कभी–कभी लगता है, मैं बहुत उदास हूँ। जी चाहता है, यहाँ से भाग जाऊँ, बहुत दूर...लेकिन किसे छोड़ दूँ...किसे पा लूँ।'

'हर वक्त मन में एक आतंक–सा बना रहता है। रात सोता हूँ तो लगता है, सुबह मम्मी....मुझे लगता है दीदी, मम्मी अब जीना ही नहीं चाहतीं। दीदी! मरे हुए व्यक्ति को देखना आसान है, लेकिन मरते हुए व्यक्ति को देखना बहुत मुश्किल है।'

मम्मी अधिक उदास हो उठती होंगी, इसलिए भावुक हो उठता है। इस स्थिति में उन्हें उबारने का कोई तरीका भी तो नहीं है मेरे पास। हारकर मैं उसे उसकी इन बातों का जवाब ही नहीं देती थी। किसी तरह उसे धीरज बँधाकर मैं बाहर आई तो देखा, बरामदे में से दरियाँ और हवन आदि का सारा सामान उठवा दिया गया है। लोग–बाग सभी जा चुके हैं। बड़े भाभी फर्श पर पानी की बाल्टियाँ ऐसे फेंक रही थीं, मानो अभी–अभी यहाँ से हवनकुंड नहीं, पापा का मृतक शरीर उठाया गया है।

बुआजी के माथे पर काफी तेवर बने हुए थे। इन्हें कुछ कह तो नहीं दिया किसी ने?मैंने बुआजी की ओर रुख किया ही था कि वे उबल पड़ीं–जीते जी कितना दान–पुण्य किया करता था वह। उसके मरने के बाद तुम्हारा तो फर्ज बनता था कि दो रोटी गरीबों को ही खिला देती।

बुआजी के तेवरों का कारण अब समझ में आया था। भैया–भाभी से वे पहले बात कर चुकी हैं, इसका मुझे पता चल गया था। लेकिन वे इसके लिए तैयार नहीं थे। मैंने अतुल से ही आकर कहा–बुआजी ठीक ही तो कहती हैं। अब सब कुछ हमीं ने ही तो करना है। मैंने जान–बूझकर ऊँचे स्वर में कहा, ताकि बात भैया तक भी पहुँच जाए, लेकिन बड़े भैया कन्नी काट छत पर चले गये।

बुआजी की बात का पलड़ा भारी होते देख मंझले भैया ने हाँ में हाँ मिलाई। इसी बीच ममी ने पास आकर मेरे हाथ में कुछ नोट था दिये थे। मेरे इनकार करने पर उन्होंने केवल मेरी मुट्ठी दवा दी थी। सब चीजें लेने–देने का काम अतुल ने ही किया था। इन सारे कार्यक्रम के समाप्त होने तक बड़ी भाभी का मुँह सूजा रहा था।

रात को हम केवल घर के सदस्य ही बाकी रह गये थे। डाइनिंग टेबल पर प्लेट्स लगाते वक्त मैं सोचने लगी थी, आज कितने दिन बाद हम सभी भाई–बहन इकट्ठे हुए हैं। इस घर में शायद ऐसा ही कोई मौका आता है, जब हम सभी इकट्ठे हो पाते हैं, वरना सभी अपने आप में व्यस्त हैं।

अब अतुल की शादी जल्दी ही हो जानी चाहिए। खाना खाते वक्त बड़ी भाभी ने मेरे मुँह की बात छीन ली थी। आज पहली बार लगा कि भाभी ने कोई अक्ल की बात की है और इस घर की जिम्मेवारी को समझा है। छोटी भाभी ने इसका समर्थन किया और बड़े गर्व के लहजे में बोली–'लड़की तो मैं बता सकती हूँ। एकदम ए वन!'

मैं तिरछी नजर से अतुल की ओर देखती हुई मुस्कुरायी। केवल उसके चेहरे पर होनेवाली प्रतिक्रिया जानने के लिए। लेकिन उसके चेहरे पर न कोई रंग आया, न गया। गर्दन झुकाए रोटी चबाता रहा वह।

'लड़की तो एक मेरे माइंड में भी है। एकाएक जैसे बिट्टो को भी ख्याल आया। पढ़ी–लिखी तो मैट्रिक तक ही है, लेकिन बहुत सुंदर है।'

'सच!' मैंने अनचाही प्रसन्नता चेहरे पर ओढ़ी और अतुल से मुखातिब हुई–भैया! अब निर्णय दे दे। तुझे कौन–सी चाहिए?

अतुल बिना किसी की ओर नजर डाले वाश–बेसिन की ओर बढ़ गया। 'लो, देवरजी गुस्सा कर गये।' छोटी भाभी बोली–'इन्हें तो पढ़ी–लिखी ही चाहिए और सुंदर भी। लेकिन आपलोग हैं कि....' और खिसियायी–सी हँसी हँस दी वह।

'गुस्सा तो बहुत आया था भाभी पर, लेकिन चुप बनी रही मैं। दो–चार दिन तो रहना है यहाँ। वो भी बिगाड़कर चली जाऊँ। इस तरह का गुस्सा तो हम भी किया करते थे। बड़े भैया थे, लेकिन जब देवीजी के दर्शन किये तो...' और ठहाका मारकर हँस दिये वे।

बात जितनी गंभीरता से शुरू हुई थी, उतनी ही मजाक में जाती लगी। विषय वहीं छोड़ मैं उठ खड़ी हुई।

रात छत पर टहलने के लिए निकल आई थी। थोड़ी ही देर बाद भाभी भी आ गयीं।

'आपने क्या सोचा है दीदी?' मेरे करीब आती हुई वह बोली।

'किस बारे में?' मैं समझती हुई भी अनजान–सी बनी आयी थी।

'अतुल की शादी के बारे में?' आखिर वह कैसी लड़की चाहता है, हमें भी तो पता चले।'

'कैसी भी लड़की चाहे, लेकिन अतुल में क्या कमी है, जो उसपर इतने व्यंग्य कसे जा रहे हैं।' मैं काफी कठोर हो आई थी।

'भाभी ने सहज एवं दृढ़ मुद्रा बनाई, बात दूसरों ने बढ़ाई थी दीदी। भला इसमें मेरा क्या दोष?मुझे तो ममी का ध्यान आता है। भला कबतक यों अकेली रह सकेंगी वह।'

भाभी को यों रहम दिल होते देख सचमुच मै विस्मय में पड़ रही थी।

'अतुल की पसंद के बारे में मैं क्या जानूँ भला।' मैंने स्वयं को थोड़ा संयत किया।

'जानती नहीं, जान तो सकती हो न?हमारे रिश्ते में एक लड़की है, कहो तो फोन करके किसी बहाने उसे यहाँ बुला लूँ।'

बात गलत नहीं लगी थी मुझे। इतना वक्त ही कहाँ था कि पहले हमलोग वहाँ जाते और फिर अतुल के देखने–दिखलाने का चक्कर पड़ता।

अतुल की जिम्मेदारी मैंने अपने ऊपर ले ली। मुझे विश्वास था कि अगर लड़की मुझे पसंद आ गयी तो अतुल 'न' नहीं करेगा।

सुबह अपने सामने ही मैंने भाभी से फोन करवा दिया। काफी हल्का महसूस करने लगी थी मैं खुद को। मेरे उठते–उठते भाभी ने जैसे पुनः याद दिलाया, 'दीदी! अतुल से बात कर लेना आज ही।' ब्रेकफास्ट लेते हुए छोटे भैया–भाभी ने लेक जाने पर प्रोग्राम बना लिया था। बड़े भैया भी भाभी को लेकर शायद किसी दोस्त के यहाँ जाने का प्रोग्राम बना चुके थे। मुझे अच्छा ही लगा था, क्योंकि यही वक्त था, जब मैं अतुल और ममी से खुलकर बात कर सकती थी। उनके जानते वक्त मुझे चुभन तो हुई थी, फिर भी मुस्कराते हुए उन्हें विदा कर मैं बरामदे में पहुँची। ममी राँस के पास खड़ी दला बीन रही थीं।

'ओह ममी! पहले ही आँखें इतनी कमजोर है, ऊपर से...' मैंने झट से ममी के हाथ से थाली छीन ली थी, 'अभी तो हम यहीं हैं।'

'जब चली जाओगी?'

'तब का इंतजाम भी हम कर रहे हैं।'

'यही कि मुझे विरेन के पास भेज देना चाहती हो?'

'मतलब?' मैं चौंकी थी।

'जान–बूझकर बस अनजान क्यों बन रही हैं?आज मैं अकेली रह गयी हूँ, इसका मतलब यह तो नहीं कि जिधर जी चाहे, उधर फेंक दो मुझे।'

भाभी की रहमदिली का मतलब मैं अब समझ रही थी। मिन्नी के लिए उसे 'मेड' नहीं मिल रही, इसका बखान वह कई बार कर चुकी थी।

ममी के कंधे पर हाथ रखती मैं बोली, 'ममी! मैं तो अतुल की शादी के बारे में कह रही थी।'

ममी फटी–सी आँखों से मेरी ओर देखने लगीं, लेकिन बाकी सभी मेरे पीछे क्यों पड़े हुए हैं?' ममी रुआँसी हो आयी थी।

'कोई आपको जबर्दस्ती नहीं करेगा ममी! जहाँ आपका जी चाहेगा, वहीं रहेंगी आप।

मैं समझ गई थी कि ममी यह घर छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहतीं। मैंने जल्दी ही माहौल को थोड़ा हल्का बनाना चाहा। 'ममी! भाभी ने अतुल के लिए एक लड़की सजैस्ट की थी। मैंने सुबह ही फोन करवा दिया है कि वे लोग लड़की को लेकर

यहीं आ जाएँ। भाभी के रिश्ते में ही है। मैं जानती हूँ, सब आपकी राय के बिना हुआ है, लेकिन अब हम आपको अकेले नहीं छोड़ना चाहतीं। हाँ, निर्णय तो आप ही देंगी।' ममी को बुरा न लगे, इसलिए मैंने सारी बात स्पष्ट कर दीं।

'मैं तो निर्णय दे दूँगी, लेकिन अतुल मानेगा?' ममी के स्वर में किसी तरह का आक्रोश नहीं था।

'आप अतुल की चिंता न करें।' मैंने बड़े आत्मविश्वास से कहा। अतुल सामने होता तो बात स्पष्ट हो जाती, लेकिन वह तो सुबह ही बिट्टो के साथ उसे उसकी ननद के यहाँ छोड़ने के लिए चला गया था।

रात सोते वक्त बिट्टो ने कई बार दोहराया था कि सुबह उसे जल्दी उठा दिया जाए, क्योंकि उसे अपनी ननद से मिलकर शाम की गाड़ी से ससुराल वापिस भी पहुँचना है। एक अजीब–सी दहशत, डर उसके चेहरे पर रहता, जो मुझे जला–सा गया था।

'ऐ! दो–चार रोज तो रुक जा। जबतक हम यहाँ हैं, तबतक ही सही। ससुराल में तो सारी उम्र ही रहना है।'

'मेरी जगह होती न, पता चल जाता दीदी!'

उसने जिस कड़वाहट से कहा, लगा अपने दुख का दोष वह मुझे ही दे रही है। मन में आया कह दूँ, दोष तेरा ही है, जो इतनी दब्बू बन गयी है। पर सोचा, मन का चाहा मैं ही कितना कर पाती हूँ। एक और भय भी तो हमलोगों के मन में समाया हुआ है। पापा सिर पर नहीं हैं, झगड़ा मोल लेकर हम किधर भटकेंगी।

बिट्टो जाने लगी थी तो बुआजी को भी अपने गुरुजी की याद आ गई थी। अपने छोटे से थैले में एक धोती और थोड़ा–सा प्रसाद लेकर वे गुरुजी के दर्शन करने को निकल गयी।

सुबह से दोपहर तक का एक–एक पल मैंने घर की एक–एक वस्तु का निरीक्षण करते हुए गुजारा था। कोठी के मेन गेट से बरामदे तक के दरवाजे तक एक अजीब–सा सूनापन छाया हुआ था। पापा थे तो कोठी एक–एक कोना हरियाली और फूलों से भरा पड़ा रहता था। गेट से प्रवेश करते ही मोतिया और चमेली की गंध पुलकित–सा कर जाती थी। बरामदे में फैला मनी प्लांट अपना अस्तित्व खो बैठा था। छतों पर फैले जाले एक अजीब–सा भयानक रूप दे रहे थे। मन में आता है, ममी से चिल्लाकर पूछूँ, आखिर यह क्या हालत बना रखी है घर की। पर मैं जानती हूँ, मेरे इस प्रश्न के आगे ममी के पास रोने के सिवाय कुछ नहीं होगा।

क्या व्यक्ति अपने लिए कभी नहीं जीना चाहता। पापा के होते हुए दु:खों के कम अम्बार टूटे थे भला। लेकिन रोने–रूलाने के बाद भी ममी के जीने की पूरी इच्छा थी। हर हाल से समझौता किये थीं वे। एक साथी चला गया तो हम भी पूरी तरह से ढह गये। खुद के लिए खुद को भी नहीं सँभाल सकते। शायद इन्सान बहुत कमजोर है। दूसरे के सहारे के बिना जी ही नहीं सकता।

पीछे वाले बगीचे में डूबते सूरज को देख रही थी कि अतुल आ गया।

'बहुत देर से आया रे?' तू तो बिट्टो को छोड़ने ही गया था, कहीं और चला गया था क्या?'

'कहीं भी तो नहीं...बस जरा..।'

'कहीं नहीं...बस जरा...पता नहीं...ये क्या जवाब मिल रहे हैं आजकल। दो–चार रोज के लिए आए हैं, पास बैठने के लिए मन नहीं करता?'

'दो–चार राजे के लिए आई हो, इसीलिए मोह नहीं बढ़ाना चाहता।' आँखों में गहरी उदासी लिए वह मुस्करा दिया।'

बड़ी मुश्किल से खुद को पिघलने से बचाया। फिर भी कह उठी, 'ठीक कहता है रे! ये मोह–ममता न होती तो इन्सान कितना सुखी होता।'

गर्दन झुकाए घास का तिनका चबाने लगा था वह।

'प्रमोशन के चांसिज कबतक हैं?' यों ही पूछ बैठी मैं।

'शायद जल्दी हो जाए।'

'तो फिर इसी खुशी में एक काम कर डाल।'

'क्या?'

'झट से शादी करवा ले।'

इस बार खुलकर हँस दिया वो।

'इतनी भी क्या जल्दी है। अभी तो सारी उम्र पड़ी है।'

'तुम्हें जल्दी नहीं, हमें तो है। अपना नहीं, ममी का तो ख्याल कर कुछ।'

'मेरी शादी करवाने से ममी को क्या सुख मिलेगा?'

'क्यों, क्यों कोई सुख नहीं मिलेगा? कुछ करेगी वह ममी के लिए।'

'जो सेवा वह ममी की करेगी, विश्वास दिलाता हूँ दीदी! उतनी सेवा मैं भी ममी की करूँगा।'

'लेकिन वो सुख...वो चैन नहीं दे पाओगे, जो बहू के आने से माँ को होता है।'

'पहले भी तो दो बहुएँ आ चुकी हैं। इसकी पूर्ति तो अबतक हो जाना चाहिए थी।'

'मैं बात को जितना लाइटली से ले जाना चाहती थी, वह उसे उतना ही तूल दे रहा था। फिर भी मैंने स्वयं को संयत रखा। अच्छा–अच्छा, ज्यादे बात मत बना। छोटी बहू के आने से जो चाव होता है, तू क्या जाने?'

वह खामोश रहा। मैं ही बोली–'कल ऑफिस से जरा जल्दी आ जाना।'

'क्यों?'

इस बार निगाहें उसने मेरे चेहरे पर गड़ा दीं, जैसे सचमुच वह किसी बात के लिए शंकित हो उठा था।

'कल कुछ लोग आ रहे हैं। मैं चाहती हूँ जाने से पहले सब कुछ करके जाऊँ।'

वह एक झटके से उठ खड़ा हुआ। आँखों में जैसे खून उतर आया था उसके।

'किसके कहने पर किया जा रहा है यह सब?' उसकी मुट्ठियाँ भिंच आयी थीं।

'किसके कहने पर होगा? क्या हमारा कोई अधिकार नहीं है?'

वह पाँव पटकता हुआ ड्राइंग रूप की ओर चल दिया। मैं भी पीछे–पीछे हो ली थी।

'आखिर हो क्या गया है तुझे?' मैं चलती–चलती बोली–'इस उम्र में कितना चाव होता है लड़कों को। एक छोटा–सा घर बन जाता है अपना। जीवन में स्थिरता आ जाती है। जिंदगी अर्थपूर्ण हो जाती है।'

'यह जीवन तो दान में दे दिया है दीदी! अगले जन्म में देखेंगे।' वह ड्राइंगरूम में सोफे पर जा दुबका था।

'नहीं दीदी! तुम गलत समझ बैठीं। मुझे समने की कोशिश करो।'

'क्या समझने की कोशिश करूँ?' मैं झुंझला आयी थी।

'मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।' उसका स्वर एकदम से शांत था।

'क्या अच्छा नहीं लगता?' मेरी आवाज पता नहीं क्यों कुछ दब सी गई थी।

'कुछ भी अच्छा नहीं लगता।' वह पुन: उसी रौ में बोला।

'पहेलियाँ क्यों बुझा रहा है। साफ–साफ कह दे न जो कहना चाहता है।'

'मैं बहुत अकेला पड़ गया था। बहुत दु:ख देखे हैं मैंने।'

'लो, यह कौन–सी बात ले बैठा। विस्मय में पड़ रही थी मैं। मैंने भी चोट–सी करनी चाही, 'तू सोचता है हम बहुत सुखी हैं। हमें किसी की चिंता नहीं है।'

'मैं जानता हूँ दीदी! लेकिन दु:ख और आतंक में बहुत अंतर होता है। मेरी अबतक की जिंदगी केवल आतंक में गुजरकर रह गई है।'

'वो आतंक अकेलेपन की वजह से ही तो था। उस आतंक से उबरने का इससे अच्छा तरीका और क्या हो सकता है भला!'

'नहीं, अब वक्त ही नहीं रहा।'

'क्यूँ ऽ ऽ ...? किस भ्रम को पाले हुए हो आखिर तू?' यह मैं नहीं, मेरे अंदर में कोई और ही बोला था जैसे।

'ठीक कहती हो दीदी!' उसके शब्दों में कंपन था, 'शायद यह मेरा भ्रम ही हो, लेकिन कभी–कभी लगता है, उस आतंक ने जिस्म की एक–एक नस को कहीं अंदर ही अंदर जला डाला है। इस उम्र में ही नपुंसकता का बोध होने लगे, तो जानते हो कैसा लगता है?'

कहने को वह कह गया, लेकिन यह शायद उसने बाद में महसूस किया कि सामने मैं बैठी हूँ। चेहरा घुटनों में छिपा लिया उसने। मैं जड़–सी हो आई थी।

रिपोर्ताज

डोमिसाइल

अनिता रश्मि
सत्यभामा ग्रैंड कुसई, डोरंडा (राँची)
मो. 9431701893

आकाशवाणी एवं दूरदर्शन ने उगला–''तीन मरे तेरह घायल।''
''तीन मरे तेरह घायल, तीन मरे तेरह घायल।''
वह अल्बर्ट एक्का चौक से जी.ई.एल.चर्च तक दौड़ता रहा कई बार।
''कहीं ई बेर नन्हकुआ का लंबर तो नय हय। मौगा गया, मंझलका गया, मुर्गा गया। कहीं ई बेर...''

वह अर्धविक्षिप्तावस्था में बड़बड़ाए जा रहा था, वह किधर जाए, किधर खोजे? छत–सात बार मोराबादी के सौंदर्यीकरण के बाद चमक उठी सड़कों की तरफ दौड़ा, फिर हताशा में गिर पड़ा।

रैफ की गाड़ियाँ। पुलिस की भीड़! सन्नाटा! जगह–जगह प्रवेशपत्र फाड़े जा रहे थे। टाँगें तोड़ी जा रही थीं। वह अपने बेटे नन्हकुआ की मोटरसाइकिल को तलाश रहा था। बंदूकों के साए का भय नहीं था। उसे तो बस नन्हकुआ की चिंता थी।

पुलिस उसे जानती–पहचानती है। अतः किसी ने कुछ नहीं कहा। घीसू नाम था उसका और जिंदगी ने उसे बहुत घिस दिया था। वह 'छुक–छुक' कह गाड़ी चलाते हुए दौड़ता रहा था। उस समय उसके दिमाग में उसका मंझलका था। उस साल वह दौड़ते हुए 'अपरू–अपरू गंगा पार' की रट लगा रहा था।

बिहारी किसी कीमत पर यहाँ नहीं नौकरी करें। वे गंगा पार जा बसें, सबकी यही कोशिश।

अपने मासूम बेटे मंझलका को लेकर सेक्टर–3 आई घीसू की जनी मीरू नहीं समझ पाई थी। वह दातुन सहित उसे वहाँ बिठाकर पत्तल लेकर बैठ गई थी और भीड़ ने उसके अष्टावक्र पुत्र को कुचल दिया था। मंझलका आठों अंग से लाचार था। उसकी अजब–गजब हरकतों को देखकर लोग उत्सुकता और हैरत से भर जाते। किसी–किसी के चेहरे पर नफरत भी छलक जाती। लेकिन माँ हर हाल में माँ होती है।

नए राज्य के गठन के समय सब कितने खुश थे। घीसू, मंझलका, नन्हकुआ के साथ मीरू भी पंजाबी के घर टीवी के सामने जमी थी। तालियों की गड़गड़ाहट टीवी में ही नहीं, सामने बैठे लोगों के बीच भी गूँज रही थी। सब एकदम घुसे चले जा रहे थे, जब नए राज्य के गठन की प्रक्रिया चल रही थी।

घर लौटकर भर रात सब नाचते–डेगते रहे थे।

दूसरे दिन से विभिन्न जाति–धर्म, समुदाय के लोगों का उल्लसित, अनुशासित जूलूस। कभी बंगालियों का, कभी मुसलमानों का, कभी ईसाइयों का, कभी कायस्थों का। सभी एकता को दर्शाने के लिए उत्कंठित। झारखंडी कहलाने के अभिमान में डूबे।

'झारखंड जिंदाबाद! जिंदाबाद!!' नारों से आकाश फट पड़ा था। वनांचल नाम को ठुकराकर झाड़–झंखाड़वाले प्रदेश को झारखंड नाम देने को जिद ठान ली थी नेताओं ने। वनांचल से वह लगाव अनुभव नहीं कर पा रहे थे सब, जो झारखंड में मिल रहा था। प्राकृतिक संपदा से ओत–प्रोत झारखंड बनते ही आदिवासियों की खुशी का पारावार नहीं।

''ई मौगा के बाप में पागल का एको गो लच्छन नय था करमी। लगता था, मौगा का गम बिसराय दिया है। ऊ तो फिन से मंझलका के गम में छरमता गया।''
मीरू सबको बताती।
करमी भी चिंतित–''हमीन सब में कइब फरक रहा मीरू? हमीन के डोमकच हो कि ऊ सभ के, हमीन सभे में शामिल रहे हँय। होरी–दीवारी, करमा–जीतिया सब्भे में शामिल।''

वह उस दिन की याद में डूब गई। रात को प्रसादजी के बेटे की बारात विदा हो गयी थी। सब औरतें रतजगा कर मड़वे तले डोमकच में व्यस्त थीं। करमी भी तो गई थी वहाँ। लड़के की माँ एवं चाची चौमुखी दीये में तेल डालकर, बाती जला, पिछौड़ा ओढ़कर लाग पर बैठ गयी थी।

अन्य औरतों के साथ करमी मीरू भी अश्लील गीतों, इशारों और अश्लील नाटकों के साथ पाँच बजे सुबह तक डोमकच में भाग लेती रही थीं। जबकि वे लोग डोमकच को अलग ढंग से मनाती थी। सवेरे चार बजे चौमुखी दीये की बत्तियाँ आपस में जुड़ गयीं।

''बत्ती जुड़ गयी, बत्ती जुड़ गयी।''

''कन्या के घर पर विवाह सम्पन्न हो गया।''

सबने एक दूसरे को बधाई दी और इधर–उधर लुढ़क गई। करमी, मीरू भिनसरे घर लौट आई थी और दूसरे ही दिन मंझलका डोमिसाइल की भेंट चढ़ गया था।

''का ऐही दिइन ले एते लड़ाई लड़े थे हाम। का बेस तेरी जिंदगी सबके साथ बिइत रहा था।''

वह मंझलका का गमछा उठाकर सिसकी। घीसू, नन्हकुआ बाहर थे और उसे बहुत डर लग रहा था।

''ऊ पगला तो बेटा के मरने के बाद आउर पगला गया हय। काहे ले जे अइसन में बाहर निकला। आउर ई नन्हकुआ को का सूझा।'' भय से सिहर उठी मीरू।

घीसू के साथ वह भी झारखंड आंदोलन में शामिल रहती थी। आपन राज और राज्य पाने के लिए उसका मन भी बेताब था। तीर–धनुष ले वह मंगरी भी सड़कों पर नारे लगाती। धरना प्रदर्शन में शामिल होती। कितनी लंबी लड़ाई के बाद अलग राज्य बना था। भीखू, घीसू का दिमाग ठीक था। उस समय बच्चे छोटे थे, वह जवान। घीसू और उसकी जिंदगी बहुत अच्छी चल रही थी। घीसू को मुर्गा लड़ाई, महुआ का शराब और माँदर बजाने का नशा था।

मुर्गा लड़ाई के सिलसिले में वह अक्सर गोंदली पोखर, सेक्टर–2, जोड़ापुल, नामकुम, सतरंजी आदि के हाट में जाता रहता था। सेर–डेढ़ सेर का साल भर का लड़का मुर्गा उसे विशेष प्रिय था। घीसू उस मुर्गे को खिला–पिलाकर खुद ही मजबूत बनाने की कोशिश करता। उसकी सारी देखभाल वह खुद करता। लाल कलगियों में हल्के हाथ से तेल लगा चमकदार कलगी को और चमकदार बनाता।

''मेरा मुन्नू रे! मेरा छुन्नू रे!''

जब हाट लगती, वह एक–दो नया मुर्गा भी खरीद लाता। पर सबसे अधिक नाज उस लाल–लाल कलगीवाले उजले मुर्गे पर ही करता था। बाँका लड़ाका मैदान–ए–जंग जीतकर आता। दायें पैर में काईत (छोटा धारदार हथियार) को बाँध देता और मुर्गे को घर पर लड़ाई का अभ्यास करवाता रहता।

''तू ही बाँका सिपाही हय। तू ही जीतेगा, देखना। बस, जरा खा–पीकर सींकिया पहलवान रहने से काम नय चलेगा।''

दीवाली बीतने के बाद हाटों मेलों में मुर्गे की लड़ाइयाँ में लोगों की दिलचस्पी देखते ही बनती। घीसू अपने बगल में उजले लड़ाके मुर्गे को दबा

वहाँ पहुँच जाता। सट्टेबाजी भी होती। कई बार दस हजार तक की बाजी लगती अक्सर और उसके साथी दस हजार जीत जाते। वह साथियों को उनके पैसे दे, बाकी सारे पैसों को हाट में ही खत्म घर लौटता। तब मीरू से उसकी जमकर लड़ाई होती। कई बार काली–नीली साड़ी लेकर आता, तब भी जमकर लड़ाई होती। हाँ, जब लाल–पीले छापेवाली साड़ी या लाल पाड़ की उजली साड़ी ला मीरू को ओढ़ा देता, उसकी खुशी छलक पड़ती।

घीसू की फरमाइश पर अक्सर वह भी तेल में महुआ भुनकर या पानी में पकाकर खिलाती।

''हमके सिझावल (पकाया हुआ) महुआ ही बेस लगता है, वो ही दे।''

वह कभी–कभी भूने हुए को लौटाकर कहता।

एक बार तो मुर्गा भी काफी दमदार। संभवतः जीत की आशा में ही मनपूरना ने अपनी मोटरसाइकिल दॉव पर लगा दी थी। बेहद लंबा और दिलचस्प मुकाबला।

''सब्भे देखबईया को मजा आ गया। इतना मजा कि का बताएँ।'' महीनों तक चर्चा

''इधर का कांईत, उधर के मुर्गा का गला काट दिया।''

''बाबा! पर ऊ मुर्गा भी कम नय था। तबे न हामर अदमीमन के मन उदास हो गया था।''

''देइख इके केतना घाव लगा हय।''

घीसू ने मुर्गे के घावों पर गेंदे की पत्तियों को बाँधते हुए कहा। मौगा ने उन पत्तियों को पीसकर लुगदी बनाकर अपने पिता को दिया था। वह एक ओर जहाँ मोटरसाइकिल पाने की खुशी में इतरा रहा था। पिता के साथ वह भी उसकी सेवा–टहल में जुटा था।

बाहर बगलगीर संगवा का लड़का मोटरसाइकिल चलाकर दरवाजे तक आ पी–पी करता रहा। मीरू और अन्य बच्चे आकर घेरकर खड़े हो गये थे। मुर्गे को बोरे पर रख, पीठ सहला कटोरे में पानी, दाना धर वे बाहर निकले। घायल मुर्गा चुपचाप पड़ा था और वे दोनों उदास थे।

''मुन्नू रे खा ले। ले पानी पी। पी रे छुन्नू।''

घीसू की कोय बात नहीं सुन रहा था बाँका लड़ाका। घीसू की उदासी बढ़ती गई।

मोटर साइकिल को सभी छू रहे थे, हँस रहे थे। कोई कोई झूमर नाचने लगा था, पर उनका मन वहाँ नहीं रमा था।

''हम ई पर चइघ के सतरंजी जायेंगे।'' सबसे छोटा पड़ोसी सबसे जियादा उत्साहित।

''मुर्गा बार–बार झुप रहा है मीरू।'' घीसू बेहद चिंतित।

बारंबार आँखों पर सफेद पट्टी पड़ जाती। रात को हारे हुए मृत मुर्गे को बनाकर मीरू छोटे बच्चे और गोतिया घरवालों के साथ खा रहे थे। रसदार मुर्गे की सुगंध से परे मौगा भी चिंतित हो बाप से कह उठा–''ऊ झुप रहा है, कहीं मोइर गया तो?''

''ई बुरा भाखा मुँह से नय निकाइर रे मौगा। हाम जीते जी मर जाएँगे।'' उन दोनों ने खाने में तनिक रुचि न दिखलाई थी, भले ही वे उसे जीतकर लाये थे। आठ दिनों के बाद उजला मुर्गा ठीक होकर मैदान–ए–जंग में जाने के लिए तैयार था। तब पहली बार उसकी सेवा–टहल से ध्यान हटा, बाप ने मोटरसाइकिल पर ध्यान दिया। मोटर साइकिल चलाना सीख घीसू, माय या भाय–बहन को बिठा मौगा उड़ता फिरता।

कुछ साल बाद सेना में जवान बन मौगा तो चला गया, बाहर रह गये ये लोग। घीसू तब भी पागल नहीं हुआ था। उसने जाने के पूर्व मौगा को लेकर अल्बर्ट एक्का की प्रतिमा पर माला चढ़ाई थी और प्रार्थना भी की थी–

''अपना झारखंड बिहार से अलग हो जाए।''

पर झारखंड के अलग होने के बहुत पहले की उसका मौगा जो मांगीलाल नायक बन सीमा पर लड़ता रहा था, दुश्मनों के साथ गोलाबारी में मारा गया था। खबर पहले आयी थी, फिर लाश।

'कहाँ है लहास? किसका है लहास?''

घीसू माँदर उठाकर देर तक नाचता–डेगता रहा। उसका ठहाका गूँज रहा था–''वाह, वाह रे वाह! लहास।''

वीर मांगीलाल नायक की लाश को लोग मसना ले गये थे। मसना में ठिकाने लगा दी गई लाश। पर वह माँदर के साथ उछलता–नाचता ही रहा। तबसे सदा अजब–सी हरकतें करता। मुर्गे के प्रति प्रेम भी कम हुआ। कब, यह भी पता नहीं चल पाया।

वह तबसे ही सड़कों पर गाड़ी एवं बैलगाड़ी चलाता रहा। उसकी बस्ती के बाहर जवान मांगीलाल की मूर्ति लग गई, इसका उसे एहसास तक नहीं। उसे होश नहीं कि उसका मौगा चला गया और अब वह सामने खड़ा है।

जब उसके अष्टावक्र पुत्र मंझलका की मूर्ति भी प्रशासन ने लगाई थी, तब वह बहुत चौंक–चौंककर देखता रहा था। दोनों भाइयों की मूर्ति साथ–साथ लगी थी। एक फौजी वर्दी में, एक हाफ पैंट में। इस बीच मुर्गा भी मर गया, तब भी चौंका था। कभी फौजियों की तरह सैल्यूट करता, कभी अष्टावक्र की तरह हाथ की उंगलियाँ नचाता, सर धुनता, आँखें नचाता।

मीरू याद करती जाती, रोती जाती। उसे मौगा की मौत का उतना गम नहीं है। उसकी मौत पर तो वह गर्व करती है, कहती भी है–

''गरब हय हमको, हामर आतमा जुड़ा दिया, हामर कोख से जन्मल छौव्वा। पइर ई हामर मंझलका को आपन देश में, आपन राइज में, आपन गलती से...''

आँसुओं के सैलाब में डूब जाते आगे शब्द।

परीक्षा हो गई। शिक्षकों की नियुक्ति के लिए होनेवाली परीक्षा में पूरा शहर भयग्रस्त। घरों में दुबके लोग टीवी–रेडियो से जा चिपके। उधर घीसू अल्बर्ट एक्का चौक से जी.एल. चर्च तक दौड़ता थकता, रोता–हँसता बेचैन इधर मीरू नन्हकुआ की जान को तो रोती–डरती हलकान।

घीसू की बेटी सिगरी बिहार के किसी गाँव में ब्याही गयी थी। अपनी ससुराल में बैठी राजधानी में बसे माँ–बाप की दशा पर चिंतित। वह भी झारखंड अलग होने की खुशी मना चुकी है। घर–गाँव, आपन देश में अब सब ठीक से रहेंगे, उसे भी विश्वास था। लेकिन अब वहाँ का भी माहौल बदले की दुर्गन्ध से भर चुका था।

''अपरू–छपरू गंगा पार।''

हर ओर शोर! लग रहा था सब घीसू हो गये हैं। सगरी को डर है, लोग कहने लगें–''झाड़–झंखाड़, झंडा उखाड़।''

उधर हलकान सगरी और इधर यामाहा मोटरसाइकिल पर घूमता नन्हकुआ। एक बंद समर्थक पुलिस पर जला हुआ टायर फेंकता, नये राज्य के नवनिर्माण में व्यस्त।

यह कहानी आगे भी चलती है। आगे की कहानी है, सगरी का डर निर्मूल नहीं। उसके पति और पूरे परिवार के लोगों को खदेड़कर वापस भेज दिया गया था। अन्य राज्यों में कमाने खाने गये उन जैसे लुटे–पिटे लोग भी रोते–कलपते अपने–अपने घर लौट रहे थे। उन्हें लौटना पड़ा था, मारपीटकर भगा दिया गया था उन्हें। डोमिसाइल का भूत उन जगहों पर भी हँस रहा था ठठाकर, हा! हा!! हा!!!

'हम सब एक हैं' का नारा कोने से झाँक रहा था। सभ्य, सुसंस्कृत समाज बर्बर आदिम युग की ओर चल पड़ा। पूरी तेजी और दमखम के साथ। वैश्विक होते–होते हम एक भारतीय रहने से भी इंकार कर रहे थे।

लघु कथा

शैलेन्द्र अस्थाना
जमशेदपुर (झारखंड)
मो0 9470505915

सेवासदन प्रसाद
सेक्टर 2, खरघर
नवी मुम्बई, (महाराष्ट्र)
मो.9619025094

अवनी बाबू

बच्चों की पढ़ाई, शादी ब्याह आदि जिम्मेदारियाँ पूरा कर अवनी बाबू अपना मध्यमवर्गीय जीवन दो कमरों के मकान और पत्नी के साथ आराम से काट रहे थे। बेटा पढ़ने में अच्छा था और एक अच्छी सी नौकरी में लगा, किसी बड़े शहर में अपनी पत्नी और बेटे के साथ रह रहा था। टहलना, गप्पबाजी करना, जमाने को कोसना तथा नयी पीढ़ी की नुक्ताचीनी करना उसका पसंदीदा टाइम पास था। यदि कोई उनकी बातों पर कान देता और कहता–''जनाब, जमाना जैसा भी हो, यह आपलोगों का ही बनाया हुआ है और नयी पीढ़ी को भी आपलोगों ने ही पैदा किया है।'' पता नहीं तब वे क्या जवाब देते?

धूप के साथ गर्मी बढ़ गई थी। दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर वे खिड़की के पास आकर बैठ गये। हवा अभी उतनी गर्म नहीं हुई थी। नौकरी से निकाले गये औरत–मर्द कर्मचारियों– कामगारों का जुलूस तख्तियाँ लिये 'काम दो, जीने का अधिकार दो' जैसे नारे लगाता हुआ बाहर सड़क पर से गुजर रहा था। अवनी बाबू चिढ़ गये। 'नालायको! नौकरी क्या सड़कों पर फलती है, जो वहाँ चिल्लाने से मिल जाएगी?' वे बुदबुदाये। उन्होंने अपने जीवन में कभी जुलूस प्रदर्शन में हिस्सा नहीं लिया। दफ्तर गये, काम किया, घर आये। बॉस ने जो कहा, जैसा कहा, वैसे किया, सवाल नहीं उठाये। बेटा भी वैसा ही मेहनती है, चुपचाप काम करता है, तभी तो इतनी जल्दी प्रोमोशन पा गया है, आगे भी ऐसे ही प्रोमोशन पाता रहेगा, उन्होंने संतोष की साँस ली। मुझे प्रोमोशन नहीं मिला, मैंने इसके लिए प्रतिवाद नहीं किया। ये गुण बेटे में भी है, उनके चेहरे पर गर्व के भाव उभर आए।

तभी मोबाईल की घंटी बजीं 'हैलो' उन्होंने उठकर फोन उठाया। ''हैलो पापा! एक बुरी खबर देनी है। उसकी आवाज में तनाव, चिंता तथा घबराहट थी। 'हमारी कंपनी ने पचास कर्मचारियों को तत्काल प्रभाव से हटा दिया है, उनमें एक मैं भी हूँ...''

''तुमसे क्या गलती हुई है?''

''गलती नहीं पापा! यह किसी की गलती की वजह से नहीं हुआ है, यह कंपनी का निर्णय है। उसकी बिजनेस पॉलिसी है। बाद में वे लोग पचास की जगह पचीस नये लोगों को आधी तनख्वाह पर रख लेंगे। फिलहाल मेरे पास एक ही विकल्प है–'मेघा और मुन्नु को लेकर घर आ जाऊँ....'

अवनी बाबू के आँखों के आगे अंधेरा छा गया, हाथ–पैर जैसे सुन्न हो गये, उन्हें लगा जैसे धरती उलट–पलट गई हो और वे हवा में लटक गये हों। उन्होंने खिड़की से बाहर देखा, जुलूस आगे बढ़ गया था, केवल उसका पिछला छोर दिख रहा था। अवनी बाबू की नजर वहीं टिकी थी।

एक और बैक्टीरिया

पिताजी की मौत का एक वर्ष बीत गया। माँ तो कभी का स्वर्ग सिधार चुकी थी। अब दीपावली का त्यौहार भी नजदीक था, तो रवि ने रश्मि से कहा–अब त्यौहार आ रहा है?

''हाँ, पहले घर का कलर करवा लो, रश्मि ने अपना फैसला सुनाया।''

''कैसा कलर करवाऊँ?' रवि ने पत्नी से पूछा।

''ऐशियन पेंट्स कराओ, उससे दीवारों पर कभी बैक्टीरिया जमा नहीं होता है।''

पत्नी की इच्छानुसार कलर कराने के बाद रवि घर की साफ–सफाई एवं सजावट में जुट गया। बातों ही बातों में रवि ने कहा–''तुम जैसा चाहती थी, कलर करवा दिया। जब दीवारें चमकने लगी है और बैक्टीरिया के जमा होने का चांस भी नहीं है।

''एक जगह बची है, जो खतरनाक हो सकती है।''

रवि तब गौर से पूरे हॉल को निहारने लगा, पर कुछ समझ न सका। तब रश्मि बोली–''ये दीवार पर टंगी तस्वीर हटा दो, इसके पीछे बैक्टीरिया जमा हो सकता है।''

पर यह तो माँ–पिताजी की तस्वीर है।

तो क्या हुआ?

कभी कोई रिश्तेदार आयेंगे तो...

तो क्या... मोबाईल में सेव है न, दिखला देंगे।

इख्तिलाफ़

सारे इलाके में हंगामा मच गया। धीरे–धीरे मौलाना इकट्ठे होने लगे। देश में तलाक बंद कराने पर जोरदार बहस हो रही थी, कानून बनाने की कोशिश की जा रही थी, ऐसे में फिर तलाक?

मौलाना साहब ने पूछा–'किसने किसको तलाक दिया?'

तभी भीड़ में से किसी ने कहा–'सलमा ने सली को तलाक दिया।'

'सलमा, औरत होकर उसकी इतनी जुर्रत?' मौलाना साहब गुस्सा होकर गरजे। तभी सलमा भीड़ को चीरती हुई आई और चिल्लाकर बोली–ये निकम्मा कुछ कमाता–वमाता है नहीं और मुझपर जुर्म ढाता है, फिर क्यों न तलाक दूँ। तलाक सिर्फ मर्द ही दे सकता है क्या?

बस चारों ओर एक सन्नाटा पसर गया।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटेल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303